साधुवादार्थ दो शब्द

स्थानकवासी जैन-संप्रदाय के आगमाभ्यासी विद्वानों में पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का नाम विशेष उल्लेखनीय है आप आगमों के विशिष्ट अभ्यासी और गम्भीर पर्यालोचक हैं। तत्त्वार्थ सूत्र का जैनागम-समन्वय (जोकि आप के द्वारा संपादित हुआ है) आपके जैनागम-संबन्धि असाधारण चिन्तन और मनन का ही विशिष्ट फल है। इसके अतिरिक्त आप ने आगमों के विवेचनीय विषयों से सबन्ध रखने वाले कतिपय मौलिक और अनुवाद रूप ग्रंथों के निर्माण से स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रसुप्त कलेवर मे अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न करने का भी पर्याप्त श्रेय प्राप्त किया है। आजसे कुछ समय पहले मैंने आप से प्रार्थना की थी कि यदि आप जैनागमों मे विभिन्न स्थानों पर विद्यमान मूल पाठों और खासकर स्याद्-वाद अनेकान्त-वाद विषय के उल्लेखों को--उन पर की गई पूर्वाचार्यों की व्याख्या के साथ--एक जगह संगृहीत कर के एक पुस्तक के आकार में प्रकाशित करा देवें तो जैनदर्शन का तुलनात्मक पद्धति से अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों और तात्त्विक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से जैनधर्म के मौलिक स्वरूप की गवेषणा करने वाले विशिष्ट विद्वानों के लिये आप की यह अपूर्व देन होगी। उन्हे इस के लिये अधिक परिश्रम न करना पडेगा और यत्न-साध्य वस्तु अनायास ही प्राप्त हो जायगी। इस के सिवाय आर्य संस्कृति के विशिष्ट अग-भूत जैन-सस्कृति मे विद्यमान दार्शनिक विचारों की प्राचीन प्रणाली से अज्ञात जैनेतर विद्वानों को उस के

विशिष्ट स्वरूप का ज्ञान भी सुलभ हो जायगा इत्यादि, मुझे यह कहते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि मेरी इस उचित प्रार्थना को आपने पूरे ध्यान से सुना और उसके लिये यथाशक्ति प्रयास करने का वचन दिया ॥

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि जिस संग्रह के लिये मैंने आचार्य श्री जी से सानुरोध प्रार्थना की थी वह सुचारूरूप से सम्पन्न हुआ। और आज एक अच्छे रूप में मुद्रित होकर पाठकों के कर कमलों की शोभा बढ़ा रहा है। अतः मेरी और मेरे सहचारी अन्य विद्वन्मण्डल जोकि इस विषय से हार्दिक प्रेम रखता है की ओर से आप के इस साधुजनोचित समुचित कार्य के लिये अनेकानेक साधु-वाद। मेरी दृष्टि मे विद्वानो के लिये यह वस्तु बड़े काम की है। वे इस से यथाशक्ति यथा-मति लाभ उठाने का अवश्य यत्न करेंगे ऐसी मुझे पूर्ण आशा है ॥

निवेदक—

हंस राज शास्त्री

स्याद् वाद

स्याद्-वाद की मौलिकता, महानता एवं उपादेयता को जानने से पूर्व उस के शाब्दिक अर्थ पर दृष्टिपात कर लेना उचित प्रतीत होता है।

स्याद्-वाद के निर्माण करने वाले स्याद् और वाद ये दो पद हैं। स्याद् यह अव्ययपद है, जो *अनेकान्त अर्थ का बोध कराता है, वाद का अर्थ है कथन अर्थात् अनेकान्त द्वारा कथन, वस्तुतत्व का प्रतिपादन स्याद्-वाद है। इस अर्थ-विचारणा से स्याद्-वाद का दूसरा नाम अनेकान्तवाद भी होता है।

एकान्त-वाद का अभाव अनेकान्तवाद है। एकान्त वाद में किसी भी पदार्थ पर भिन्न दृष्टियों से विचार नहीं किया जाता प्रत्युत एक पदार्थ को एक ही दृष्टि से देखा जाता है जब कि अनेकान्त-वाद प्रत्येक वस्तु का भिन्न २ दृष्टिकोणों से विचार करता है, देखता है, और कहता है।

जैन-दर्शन अनेकान्त-वादी है। एकान्त-वाद उसे इष्ट नहीं है। एकान्त-वाद अपूर्ण है, सत्यता को पङ्गु बनाने वाला है और यह लोकव्यवहार का साधक न होकर वाधक बनता है। एकान्त-वाद की व्यवहार-वाधकता उदाहरण से समझिए—

एक व्यक्ति दुकान पर बैठा है। एक ओर से एक बालक आता है, वह कहता है – पिता जी !, दूसरी ओर से एक बालिका आती है, वह कहती है—चाचा जी !, तीसरी ओर से एक वृद्धा आती है, वह कहती है—पुत्र !, चौथी ओर से उस का समवयस्क

*स्याद् इत्यव्ययम् अनेकान्त- द्योतक, तत स्याद् वाद - अनेकान्त-वाद । (स्याद्-वाद-मंजरी मे मल्लिषेणसूरि)

एक मनुष्य आता है, और कहता है- भाई !, इतने में एक बालक दुकान के भीतर से निकलता है वह कहता है—मामा जी !, मतलब यह है कोई उस व्यक्ति को चाचा, कोई ताऊ, कोई मामा और कोई पिता कहता है। प्रत्येक एक दूसरे की बात मानने को तैयार नहीं है। पुत्र कहता है—ये तो पिता ही हैं। वृद्धा कहती है—नहीं नहीं, यह तो पुत्र ही है। आदि आदि।

सभी एकान्त-वादी बने हुए हैं—एक ही दृष्टि को लेकर तने हुए हैं। कोई अपना आग्रह छोड़ने को तैयार नहीं, कहिए इन का निर्णय कैसे हो? कैसे इन के अशान्त मन को शान्त किया जाए? एकान्त-वाद तो इस विवाद का मूल है, वह भला इस मे निर्णायक कैसे बन सकता है?

यहां अनेकान्त-वाद का आश्रयण करना होगा। अनेकान्त-वाद इस विवाद को बड़ी सुन्दरता से निपटा देता है। देखिए—अनेकान्त-वादी लड़के से कहता है—पुत्र ! तुम ठीक कहते हो—ये तुम्हारे पिता हैं, किन्तु यह ध्यान रहे ये तुम्हारे हैं न कि सबके क्योंकि तुम इनके पुत्र हो। लड़की से कहता है—पुत्रि ! तुम भी गलत नहीं कहती हो, ये तुम्हारे चाचा हैं, क्योंकि ये तुम्हारे पिता के छोटे भाई हैं, आदि इत्यादि।

अनेकान्तवाद कहता है—एक ही व्यक्ति मे अनेक धर्म हैं, परन्तु वे भिन्न २ दृष्टियों से हैं, न कि केवल एक दृष्टि से, विवाद तब होता है, जब एक ही दृष्टि का आदर होता है, और अन्य दृष्टियों का अनादर। देखा, अनेकान्त-वाद का अपूर्व निर्णय ! और देखो, एकान्त वाद की लोक-व्यवहार-बाधकता !

स्याद्-वाद के इस गूढ़ रहस्य को जानने वाले स्याद्-वादी-

अनेकान्त-वादी की दृष्टि मे बोर्ड पर खींची हुई तीन इच की रेखा मे अपेक्षाकृत बड़ापन तथा अपेक्षाकृत ही छोटापन रहा हुआ है। यदि तीन इच की रेखा के नीचे पांच इच की रेखा खींच दी जाए तो वह (तीन इच की रेखा) पांच इच की रेखा की अपेक्षा छोटी है और ऊपर दो इच की रेखा खींच दी जाए तो वह ऊपर की अपेक्षा बडी है। एक ही रेखा में छोटापन तथा बडापन ये दोनो धर्म अपेक्षा से रह रहे हैं। स्याद्-वादी तीन इंच की रेखा को "यह छोटी ही है" अथवा "यह बडी ही है" इन शब्दों से नहीं कह सकेगा।

ऊपर के विवेचन मे अभी तक स्थूल लौकिक उदाहरणों से स्याद्-वाद को समझाने का प्रयत्न किया गया है। अब जरा दार्शनिक उदाहरणों से स्याद्-वाद की उपादेयता को समझिए।

जैन दर्शन कहता है कि प्रत्येक पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी है। पाठक इस बात से अवश्य विस्मित होंगे और उन्हे सहसा यह ख्याल आएगा कि जो पदार्थ नित्य है, वह भला अनित्य कैसे हो सकता है?, और जो अनित्य है वह नित्य कैसे हो सकता है?, परन्तु पाठक जरा गंभीर चिन्तन करें और देखें स्याद्-वाद इस समस्या को कैसे सुलझाता है—

कल्पना कीजिये—एक सोने का कुण्डल है। हम देखते है कि जिस सुवर्ण से वह बना है, उसी से और भी कटक आदि कई प्रकार के आभूषण बन सकते हैं। यदि उस कुण्डल को तोड़ कर हम उसी कुण्डल के सुवर्ण से कोई दूसरा भूषण तैयार करलें तो उसे कदापि कुण्डल नहीं कहा जा सकेगा। उसी सुवर्ण के होते हुए भी उस को

कुण्डल न कहने का कारण ? उत्तर स्पष्ट है, उस में अब कुण्डल का आकार नहीं रहा।

इस से यह स्वतः सिद्ध है कि कुण्डल कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है, बल्कि सुवर्ण का एक आकार विशेष है। और यह आकार विशेष सुवर्ण से सर्वथा भिन्न नहीं है, उसी का एक रूप है। क्योंकि भिन्न २ आकारों में परिवर्तित सुवर्ण जब कुण्डल कटक आदि भिन्न नामों से सम्बोधित होता है तो उस स्थिति में आकार सुवर्ण से सर्वथा भिन्न कैसे हो सकता है ? अब देखना है कि इन दोनों स्वरूपों में विनाशी-स्वरूप कौनसा है ? और नित्य कौनसा ? यह प्रत्यक्ष है कि कुण्डल का आकार स्वरूप विनाशी है। क्योंकि वह बनता है और बिगड़ता है पहले नहीं था बाद में भी नहीं रहेगा। और कुण्डल का जो दूसरा स्वरूप सुवर्ण है, वह अविनाशी है,क्योंकि उस का कभी नाश नहीं होता कुण्डल की निर्मिति से पूर्व भी वह था, और उसके बनने पर भी वह मौजूद है, जब कुण्डल नष्ट हो जायगा तब भी वह मौजूद रहेगा। प्रत्येक दशा में सुवर्ण सुवर्ण ही रहेगा। सुवर्ण अपने आप में स्थायी तत्त्व है, उसे बनना बिगड़ना नहीं, इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि कुण्डल का एक स्वरूप विनाशी है, और दूसरा अविनाशी। एक बनता है और नष्ट होता है, परन्तु दूसरा हमेशा बना रहता है, नित्य रहता है। अतः अनेकान्त-वाद की दृष्टि से—कुण्डल अपने आकार की दृष्टि से विनष्ट होने के कारण अनित्य है और मूल सुवर्ण के रूप में अविनाशी रूप में नित्य। इस प्रकार एक ही पदार्थ में परस्पर विरोधी से दीखने वाले नित्यता और अनित्यता रूप धर्मों को सिद्ध करने वाला सिद्धान्त अनेकान्तवाद ही है।

संसार मे जितने भी एकान्त-वादी विचारक है वे पदार्थ के एक २ अंश-धर्म को ही पूरा पदार्थ समझते हैं। इसी लिये उन का दूसरे धर्म-वालों से विवाद होता है, और कभी कभी तो वे इतने आग्रही होकर लडते-झगडते दिखाई पड़ते है कि मनुष्यता से भी हाथ धो बैठते है।

जिस समय राजगृहनगर के चौराहों पर पण्डितों के दल के दल घूमा करते थे, धर्म और सत्य के नाम पर कदाग्रह की पूजा हो रही थी, सभ्यता को मुह छिपाने के लिये भी जगह नहीं मिल रही थी, असभ्यता विद्वत्ता के सिंहासन पर बैठी हुई थी, पण्डितों के दलों मे जा आपस मे अनेक तरह से भिड पड़ते थे, बोलाचाली के साथ २ हाथापाई मुक्कामुक्की तक की नौबत भी आजाती थी, ये पण्डित बड़ी तेज़ी से धर्म-रक्षा के लिये प्राण देने और लेने के लिये प्रतिक्षण तैयार रहते थे, कहीं नित्यवादी अनित्यवादी का मस्तक पत्थर मार कर इसलिये फोड देता कि जब पदार्थ अनित्य (स्थायी न रहने वाले) है तो मस्तक के फूटने से तुम्हारा क्या बिगडा !, कहीं अनित्यवादी नित्यवादी के मस्तक को इसलिये फोड़ता कि तुम तो कहते हो पदार्थ नित्य (स्थायी ही रहने वाला) है तो फिर रोते क्यों हो !, इस तरह से एक दूसरे को पछाड़ता, वह दर्शनों का युग था, जहां जिस की टक्कर होती वहीं युद्ध का श्रीगणेश हो जाता, पण्डितों के इन भीषण धर्म्म-द्वन्द्वों से नगर में सर्वतोमुखी आतंक छाया हुआ था, जनता धर्मतत्व से ऊब चुकी थी उस से घृणा करने लग गई थी। अब तो वहां किसी शान्ति के पथप्रदर्शक की प्रतीक्षा हो रही थी।

अहिंसा और सत्य के देवता भगवान महावीर स्वामी इसी युग मे ससार मे अवतरित हुए थे,जो कि एक विशिष्ट वैद्य के रूप मे आधि, व्याधि और उपाधिरूप त्रिताप से सतप्त संसार को शान्ति का अमर सन्देश देने के लिये पधारे थे, उन्हो ने देश के रोग के निदान-मूलकारण को टटोला और अनेकान्तवाद के दिव्य औषध से उस का उपचार कर उसे शान्त किया।

भगवान महावीर ने संसार को अनेकान्त-वाद का अमर सन्देश दिया। प्रभु महावीर ने सिंह-गर्जना से कहा—हे आर्यो! परस्पर मे लड़ने से कभी शान्ति नहीं होगी। पारस्परिक द्वन्द्वो से कभी किसी की उन्नति नहीं हो पाई है अत परस्पर स्नेह स्थापित करो और परस्पर मे भ्रातृभाव का पोषण करो। विवाद का मूल तुम्हारा एकान्तवादी होना है उसे छोड़ो और अनेकान्त-वादी वनो। किसी भी पदार्थ को एकदृष्टि से मत देखो, उस मे स्थित सभी अशों पर गंभीरता से विचार करो।

जो कहता है कि आत्मा नित्य ही है, वह भूलता है और जो कहता है कि आत्मा अनित्य ही है, वह भी भूल करता है। वास्तव मे आत्मा नित्यानित्य है—नित्य भी है, अनित्य भी है। ससारी आत्मा कभी मनुष्यपर्याय (अवस्था) मे तथा कभी पशु आदि पर्यायों में यातायात करती रहती है,एक अवस्था में स्थिरनहीं रहती है, नट की भांति अनेकविध नेपथ्य धारण करती है, इस दृष्टि से यह आत्मा अनित्य है। तथा आत्मा किसी भी मनुष्य आदि पर्याय मे रहे किन्तु वह रहती आत्मा ही है, अनात्मा नहीं बन जाती, ज्ञान दर्शन की अनन्तता से शून्य नहीं हो पाती है, इस दृष्टि से आत्मा नित्य है। आत्मा को नित्यानित्य मानने पर

ही लोक व्यवहार सधता है, और पारस्परिक शाति स्थायी रह सकती है अस्तु। पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु और आकाश किसीभी पदार्थ के सभी अशों पर किये गये विचार को ही स्याद्-वाद या अनेकान्तवाद कहा जाता है, इसी स्याद्-वाद की दिव्य औषधी ने उस समय राष्ट्र के अन्तर-स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा।

स्याद्-वाद एक अमर विभूति है, जो अमरत्व की सन्देश-वाहिका है, तथा प्रेम और शान्ति की जनिका है। स्याद्-वादी कभी किसी दर्शन से घृणा नहीं करेगा, यदि संसार के समस्त दार्शनिक अपने एकान्त आग्रह को त्यागकर अनेकान्त से काम लेने लगे तो दर्शन-जीवन के सभी प्रश्न सहज मे ही निपट सकते है। स्याद्-वाद की समन्वय-दृष्टि बडी विलक्षण है। जिस प्रकार जन्म के अन्धे कई मनुष्य किसी हाथी के भिन्न २ अवयवों को ही पूर्ण हाथी समझ कर परस्पर लड़ते हैं। पूंछ पकड़ने वाला कहता है—हाथी तो मोटे रस्से जैसा होता है। सूण्ड पकड़ने वाला कहता है झूठ कहते हो, हाथी तो मूसल जैसा होता है। कान पकड़ने वाला कहता है अरे भाई! यदि आखें नहीं, हाथ तो हैं ही, हाथी तो छाज जैसा होता है। पेट को छूने वाले अन्ध-देवता बोले—तुम सब झूठे हो, बकवादी हो, व्यर्थ की गप्पे हांकने वाले हो, हाथी को तो मैंने समझा है, हाथी तो अनाज भरने वाली कोठी जैसा होता है। मतलब यह है प्रत्येक अन्धा अपने २ पकडे हुए हाथी के एक२ अंग को हाथी समझता है एक दूसरे को झूठा कहता है, तथा एक दूसरे से लड़ने मरने के लिये तैयार हो जाता है।

सद् भाग्य से वहा कोई शांतिप्रिय, आखों वाला अज्जन

आगया, उन जन्मान्धो की तू तू मै मैं को सुन तथा सारी स्थिति समझ कर, उन पर करुणा करता हुआ बोल उठता है—बन्धुओ! क्यों लड २ कर मर रहे हो? क्यों चर्म-चक्षु खो लेने पर भी आन्तरिक दिव्य चक्षुओं को विनष्ट करने में उद्यत हो रहे हो सुनो, मेरी बात सुनो! मै तुम्हारा विवाद निपटाए देता हूँ, तुम सच्चे होकर भी झूठे हो। तुम ने हाथी को समझा ही नहीं। हाथी के एक २ अवयव को ही तुम हाथी समझ रहे हो। एक दूसरे को झुठलाने की कोशिश मत करो। तुम अपनी २ दृष्टि का आग्रह छोड कर हाथी के समस्त अगो को मिला डालो बस हाथी बन गया। यह ठीक है कि हाथी की पूछ रस्से जैसी मोटी होती है एवं हाथी के कान छाज जैसे होते है परन्तु केवल कान को या पूछ आदि को हाथी समझना या कहना भूल है। सभी अंगों के समुदाय का नाम हाथी है, और यही सत्य है। अपना २ आग्रह छोडो और देखो झगडा अभी निपटा पड़ा है।

ठीक इसी प्रकार स्याद्-वाद भी परस्पर एक दूसरे पर आक्रमण करने वाले दर्शनो को सापेक्ष सत्य मान कर समन्वय कर देता है। उपाध्याय यशोविजय जी ने कितने सुन्दर शब्दों मे स्याद्-वाद का रहस्य प्रकट किया है—* 'सच्चा अनेकान्त वादी किसी भी दर्शन मे द्वेष नहीं करता। वह सम्पूर्ण नयरूप दर्शनों को इस प्रकार वात्सल्य-दृष्टि से देखता है, जैसे कोई पिता अपने

---

* यस्य सर्वत्र समता नयेषु तनयेष्विव।
तस्यानेकान्तवादस्य क्व न्यूनाधिकशेमुषी॥

पुत्रों को देखता हो। क्योंकि अनेकान्त-वादी की न्यूनाधिक बुद्धि नहीं हो सकती। वास्तव मे सच्चा शास्त्रज्ञ कहे जाने का अधिकारी वही है जो अनेकान्त-वाद का अवलम्बन लेकर सम्पूर्ण दर्शनों में समान भाव रखता है । माध्यस्थभाव ही शास्त्रों का गूढ रहस्य है। यही धर्म-वाद है। माध्यस्थभाव रहने पर शास्त्रों के एक पद का ज्ञान भी सफल है। अन्यथा क्रोड़ों शास्त्रों के पढ़ जाने से भी कोई लाभ नहीं।

स्याद्-वाद की अव्यावाध गति है । कहीं पर भी उस की गति स्तभित नहीं होती। जहा देखो वहीं स्याद-वाद आसन जमाए बैठा है। आचार्य-प्रवर श्री हेमचन्द्र सूरि तो यहा तक बोल उठे हैं—कि वैयाकरणों के जो विकल्प, बाहुलक आदि हैं वे सब के सब स्याद्-वाद के ही आश्रित है। उन का कहना है कि *व्याकरण की सिद्धि ही स्याद्-वाद से होती है। स्याद्-वाद के विना व्याकरण का कोइ महत्त्व नहीं रहता।

तेन स्याद्वादमालब्य, सर्वदर्शनतुल्यतां ।
मोक्षोद्देशाविशेषेण य पश्यति स शास्त्रवित् ॥

माध्यस्थमेव शास्त्रार्थो येन तच्चारु सिध्यति ।
स एव धर्मवाद स्यादन्यद्बालिशवल्गनम ॥

माध्यस्थसहितं त्वेकपद-ज्ञानमपि प्रमा ।
शास्त्रकोटि. वृथैवान्या, तथा चोक्तं महात्मना ॥

(अध्यात्मसार)

* सिद्धि स्याद्वादात्। १।१।२ ॥

(हैमसूत्रम)

स्याद्-वाद के इस अमर सिद्धान्त को दार्शनिक संसार ने बडा मान दिया है, महात्मा गाधी जैसे ससार के महान पुरुषों ने भी इस की महान प्रशसा की है। पाश्चात्य विद्वान् डा० थामस आदि ने भी कहा है कि— 'स्याद्-वाद का सिद्धान्त बडा ही गभीर है। यह वस्तु की भिन्न २ स्थितियो पर अच्छा प्रकाश डालता है।"

आज चारों ओर, जो पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा धर्मिक विरोध दृष्टिगोचर हो रहे हें तथा कलह ईर्ष्या, अनुदारता, साम्प्रदायिकता और संकीर्णता आदि दोषों ने मानव-समाज को खोखला बना डाला है, इन सब को शान्त करने का एकमात्र यदि कोई उपाय है तोवह बस स्याद्-वाद ही है। विश्व मे जब भी कभी शान्ति होगी तो वह स्याद्-वाद से ही होगी यह बात नि सदेह सत्य है।

जिस स्याद्-वाद के सम्बन्ध मे ऊपर कुछ कहा गया है। उस का उद्गम स्थान है—जैनागम। जैनागमों मे स्याद्-वाद का बड़ी सुन्दरता मे विवेचन मिलता है। विवेचन का ढग भी बडा निराला है। साधारण बुद्धि का धनी भी उसे पढ़ कर गद्गद् हो उठता है। जानकारी के लिये एक उदाहरण देता हूँ—

भगवती सूत्र मे लिखा है—भगवान् महावीर राजगृह नगरी में विराजमान थे। भगवान के प्रधान शिष्य अनगार गौतम भगवान से एक प्रश्न पूछते हैं। अनगार गौतम बोले—

भदन्त! जीव शाश्वत (नित्य) हैं या अशाश्वत (अनित्य) हैं, भगवान बोले—गौतम! जीव कथञ्चित् शाश्वत हैं, कथञ्चित आशाश्वत।

गौतम,—भदन्त! जीव कथञ्चित् शाश्वत हैं, तथा कथञ्चित् अशाश्वत हैं, यह कहने से अभिप्रेत क्या है?

भगवान,—गौतम ! प्रत्येक पदार्थ को अनेक दृष्टियों से देखा जाता है। यदि जीव को द्रव्यत्वेव (द्रव्य की अपेक्षा से) देखते है तो वे शाश्वत हैं, क्योंकि वे किसी भी अवस्था में रहें, किन्तु रहेंगे द्रव्यत्व-विशिष्ट ही; द्रव्यत्व से च्युत नहीं होंगे। यदि अवस्था-परिवर्तन की दृष्टि से विचार करते है तो वे अशाश्वत है। क्योंकि कभी तो वे मनुष्य शरीर को त्याग कर पशु-देहधारी वन जाते है और कभी पशुदेह को छोड कर देवताओं के ससार में जा उत्पन्न होते है—उन में अवस्थाओं का परिवर्तन होता रहता है, वे एक अवस्था मे नहीं रह पाते। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से विचार करने पर जीव शाश्वत भी हैं तथा अशाश्वत भी है *।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं जिन से श्री भगवती सूत्र, श्री सूत्रकृताङ्ग, और श्री जीवाभिगम आदि ✳सूत्र भरे पड़े है। जोकि स्वतन्त्र अध्ययन से सम्बन्ध रखते है।

---

* प्र० - जीवा णं भंते ! किं सासया असासया।
उ०—गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया।
प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ,—जीवा सिया सासया सिय असासया !
उ०—गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, भावट्ठयाए असासया से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ—जाव सिय सासया, सिय असासया। (भगवती सूत्र)

✳प्रस्तुत "जैनागमों मे स्याद्-वाद" नामक पुस्तक मे श्री प्रज्ञापना सूत्र का पांचवा पद तथा श्री सूत्र कृतांग जी के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का ५वा अध्याय भी सम्पूर्ण प्रकाशित है ताकि पाठक सुविधापूर्वक स्याद्-वाद के स्वरूप को अवगत कर सके।

स्याद् वाद प्रेमियों की यह चिरकाल से भावना तथा कामना चली आरही थी कि जैनागमों में जहा कहीं भी लोकोपयोगी स्याद वाद प्रदर्शन करने वाले पाठ है उन का तथा साथ मे उन पाठों पर की गई प्राचीन आचार्यों की सस्कृत टीकायों का भी सग्रह हो जाय। ताकि प्रत्येक जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा को एक ही स्थान पर पूर्ण कर सके। पर यह काम कोई साधारण काम नहीं था, इस काम के लिये आगमों के मन्थन करने वाले किसी आगमों के मार्मिक विद्वान की आवश्यकता थी। मै यह वडे गौरव से लिखने लगा हूँ कि मेरे गुरुदेव, जैनधर्म-दिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य परमपूज्य, परमश्रद्धेय, श्री आत्मारामजी महाराज के आगमसम्बन्धी विशिष्ट अध्ययन, तथा तद्विषयक सततचिन्तन ने उस आवश्यकता को पूरा कर डाला है। पूज्य श्री जी म० ने अपने आगम-स्वाध्याय के बल से जहा कहीं भी स्याद् वाद सम्बन्धी आगमों मे पाठ थे उन को एक स्थान पर सकलित कर दिया और साथ मे उन पाठों पर की गई प्राचीन आचार्यों की सस्कृत व्याख्याभी संगृहीतकर दी है। वही सकलन आज "जैनागमों मे स्याद्-वाद" के रूप से पाठकों के कर कमलों मे शोभा पा रहा है।

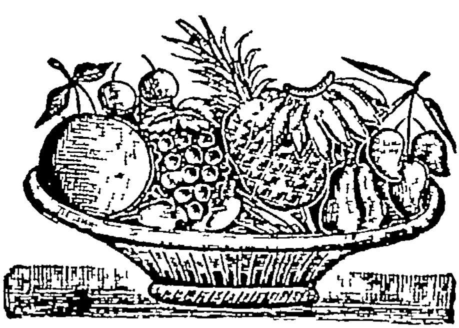
इस ग्रन्थरत्न मे प्राय आवश्यक सभी स्याद् वाद सम्बन्धी आगम पाठों का सग्रह हे जो कि स्याद्-वाद प्रेमी पाठकों की कामना को पूर्णकरने मे कल्प वृक्ष के समान पर्याप्त हे। ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

अन्त में मै आशा करता हूं कि विद्वद्वृन्द इस संग्रह से आवश्य लाभ उठाने का यत्न करेगा। यह अनमोल संग्रह है। एक पाठ टटोलने के लिये ग्रन्थ के सैंकड़ों पृष्ठों को इधर उधर उलटाना पड़ता है। यहा तो आप को प्राय सभी पाठ विना परिश्रम के एक स्थान पर ही मिल सकेंगे, इसलिये इस संग्रह से अधिक से अधिक लाभ लेने का उद्योग करें ताकि जैनागमों के मार्मिक वेत्ता और प्राकृत भाषा के अद्वितीय विद्वान संग्राहक पूज्य श्री जी म० का कृत परिश्रम सफल हो सके।

ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति।

श्रावण कृष्णा ८, २००८,
जैन स्थानक,
लुधियाना।

प्रार्थी—
ज्ञान मुनि



धन्य-वाद

जैनागमों मे स्याद्-वाद के प्रकाशन में जिन दानी महानुभावों ने सहयोग दिया है उन का मैं समाज की ओर से सादर धन्यवाद करता हूँ, और अन्य धनिकों से भी जैन सिद्धान्तों के प्रचार में यथाशक्ति यत्नपूर्वक सहयोग देकर पुण्योपार्जन कर लेने की कामना करता हू ।

दानी महानुभावों के नाम ये हैं—

१.	श्रीमान् लाला ताराचन्द जी जैन जालन्धर छावनी	४००)
२.	श्रीमान् लाला बली राम जी मालेरकोटला	३००)
३.	श्रीमान् चौधरी लक्ष्मीचन्द जी अम्बाला शहर	१००)
४	श्रीमान् लाला दिवान चन्द जी जगाधरी	१००)
५.	श्रीमान् लाला बालमुकुन्द जी रावलपिण्डी वाले देहली	१००)
६	श्रीमान् लाला राम चन्द जी लुधियाना	११०)
७	श्रीमान् लाला कस्तूरी लाल मिल्खी राम जैन मलेरकोटला	१०१)
८	श्रीमती भाग्यवन्ती देवी जैन जालन्धर छावनी	१०१)
९	श्रीमान् लाला सोहन लाल जुगलकिशोर जैन लुधियाना	१०१)
१०.	श्रीमान् लाला प्रसन्ना मल वृषभान जैन दनौदा	५०)
११.	श्रीमान् लाला सोहन लाल जैन हकीम लुधियाना	५०)

प्रार्थी—

मन्त्री—

जैन-शास्त्रमाला कार्यालय,

लुधियाना.

यस्य सर्वत्र समता नयेषु तनयेष्विव ।
तस्यानेकान्तवादस्य क्व न्यूनाधिकशेमुषी ॥
तेन स्याद्वादमालम्व्य, सर्वदर्शनतुल्यतां ।
मोक्षोद्देशाविशेषेण, यः पश्यति सः शास्त्रवित् ॥

नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

जैनागमों में स्याद्वाद

श्री सूयगडाङ्ग सूत्र

एवमेयाणि जंपंता, बाला पंडिअमाणिणो ।
निययानिययं संतं अयाणंता अबुद्धिया ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥१।१।२।४॥

टीका— एव श्लोकद्वयेन नियतिवादिमतमुपन्यस्यास्योत्तरदानायाह । एवमीत्यनन्तरोक्तस्योपप्रदर्शने । एतानि पूर्वोक्तानि नियतिवादाश्रितानि वचनानि जल्पन्तोऽभिदधतो बाला इव बाला अज्ञा सदसद्विवेक-विकला अपि सन्तः पण्डितमानिन आत्मानं पण्डितं मन्तुं शील येषा ते तथा किमिति त एवमुच्यन्ते ? इति तदाह यतो 'नियतानियतं सतमिति' सुखादिकं किञ्चिन्नियतिकृतम्—अवश्यभाव्युदयप्रापितं तथा च नियतम्-आत्मपुरुषकारेश्वरादिप्रापितं सत् नियतिकृतमेवै-कान्तेनाश्रयन्ति, अतोऽजानाना सुखदुःखादिकारणमबुद्धिका बुद्धि-रहिता भवन्तीति तथाहि—आर्हतानां किंचित्सुखदुःखादि नियतित एव भवति, तत्कारणस्य कर्मण. कस्मिंश्चिदवसरेऽवश्यंभाव्युदयसद्भावा-न्नयतिकृतमित्युच्यते, तथा किंचिदनियतिकृतञ्च—पुरुषकारकालेश्वर-

सम्यक् इतं-गतं सदनुष्ठानतया रागद्वेषरहितत्वेन समतया वा, तथा चोक्तम्—*"जहा पुण्णस्य कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ" इत्यादि, समं वा-धर्मम् उत्-प्राबल्येन आह-उक्तवान् प्राणिनामनुग्रहार्थं न पूजासत्कारार्थमिति ॥४॥

मूलम्-संकेज्ज याऽसंकितभाव भिक्खू,
विभज्जवायं च वियागरेज्जा।
भासादुयं धम्मसमुट्ठितेहिं,
वियागरेज्ज्जा समया सुपन्ने ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥१।१४।२२॥

टीका-साम्प्रतं व्याख्यानविधिमधिकृत्याह-'भिक्षु' साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नर्वाग्दर्शित्वादर्थनिर्णयं प्रति अशङ्कितभावोऽपि 'शंकेत' औद्धत्यं परिहरन्नहमेवार्थस्य वेत्ता नापरः कश्चिदित्येवं गर्वं न कुर्वीत किन्तु विषममर्थं प्ररूपयन् साशङ्कमेव कथयेद्, यदिवा परिस्फुटमप्यशङ्कितभावमप्यर्थं न तथा कथयेत् यथा परः शंकेत, तथा विभज्यवादं-पृथगर्थनिर्णयवादं व्यागृणीयात् यदिवा विभज्यवादः—स्याद्वादस्तं सर्वत्रास्खलितं लोकव्यवहाराविसंवादित्तया सर्वव्यापिनं स्वानुभवसिद्धं वदेत्, अथवा सम्यगर्थान् विभज्य-पृथक्कृत्वा तद्वादं वदेत्, तद्यथा—नित्यवादं द्रव्यार्थतया पर्यायार्थतया त्वनित्यवादं वदेत्, तथा स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-भावैः सर्वेऽपि पदार्थाः सन्ति, परद्रव्यादिभिस्तु न सन्ति, तथा चोक्तम्—"सदेव सर्वं को नेच्छेत्स्वरूपादि-

---

*यथा पूर्णस्य कथ्यते तथा तुच्छस्य कथ्यते।

चतुष्टयात् ? असदेव विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठते ॥१॥' इत्यादिक विभज्यवाद वदेदिति । विभज्यवादमपि भाषाद्वितयेनैव ब्रूयादित्याह्–भाषयो -आद्यचरमयो' सत्यासत्यामृषयोर्द्विकं भाषाद्विक तद्भाषाद्वयं क्वचित्पृष्टो वा धर्मकथावसरेऽन्यदा वा सदा वा 'व्यागृणीयात्' भाषेन, किंभूत सन् ? सम्यक्-सत्सयमानुष्ठानेनोत्थिताः समुत्थिता सत्साधव उद्युक्तविहारिणो न पुनरुदायिनृपमारकवदकृत्रिमास्तै सम्यगुत्थितै सह विहरन चक्रवर्तिद्रमकयो समतया रागद्वेषरहितो वा शोभनप्रज्ञो भाषाद्वयोपेत सम्यग्धर्म व्यागृणीयादिति ॥२२॥

मूलम्–अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो ।
सासयमसासए वा, इति दिट्ठिं न धारये ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो न विज्जई ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।२,३॥

टीका–नास्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्य धर्माधर्मादिकस्य वा द्रव्यस्यादि —प्रथमोत्पत्तिर्विद्यत इत्यनादिकस्तमेवभूत 'परिज्ञाय' प्रमाणेन परिच्छिद्य तथा 'अनवदग्रम्' अपर्यवसान च परिज्ञायोभयनयात्मकव्युदासेनैकनयदृष्टयाऽवधारणात्मकप्रत्ययमनाचारं दर्शयति–शश्वद्भवतीति शाश्वतं—नित्य साख्याभिप्रायेणाप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभाव स्वदर्शने चानुयायिन सामान्यांशमवलम्ब्य धर्माधर्माकाशादिष्वनादित्वमपर्यवसानत्व चोपलभ्य सर्वमिद शा-

श्वतमित्येवंभूतां दृष्टिं 'न धारयेदिति' एवं पक्षं न समाश्रयेत्। तथा विशेषपक्षमाश्रित्य 'वर्त्तमाननारकाः समुच्छेत्स्यन्ती' त्येतच्च सूत्रमंगीकृत्य यत्सत्तत्सर्वमनित्यमित्येवंभूतबौद्धदर्शनाभिप्रायेण च सर्वमशाश्वतम्—अनित्यमित्येवंभूतां च दृष्टिं न धारयेदिति ॥२॥ किमित्येकान्तेन शाश्वतमशाश्वतं वा वस्त्वित्येवंभूतां दृष्टिं न धारयेदित्याह—सर्वं नित्यमेवानित्यमेव वै ताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामभ्युपगम्यमानाभ्यामनयोर्वा पक्षयोर्व्यवहरणं व्यवहारो-लोकस्यैहिकामुष्मिकयो कार्ययो प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणो न विद्यते, तथाहि—अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं सर्वं नित्यमित्येवं न व्यवह्रियते, प्रत्यक्षेणैव नवपुराणादिभावेन प्रध्वंसाभावेन वा दर्शनात्, तथैव च लोकस्य प्रवृत्तेः, आमुष्मिकेऽपि नित्यत्वादात्मनो बन्धमोक्षाद्यभावेन दीक्षायमनियमादिकमनर्थकमिति न व्यवह्रियते। तथैकान्तानित्यत्वेऽपि लोको धनधान्यघटपटादिकमनागतभोगार्थं न संगृह्णीयात्, तथाऽऽमुष्मिकेऽपि क्षणिकत्वादात्मन प्रवृत्तिर्न स्यात्, तथा च दीक्षाविहारादिकमनर्थकं, तस्मान्नित्यात्मके एव स्याद्वादे सर्वव्यवहारप्रवृत्ति, अतएव तयोर्नित्यानित्ययो स्थानयोरेकान्तत्वेन समाश्रीयमाणयोरैहिकामुष्मिककार्यविध्वंसरूपमनाचारं मौनीन्द्रागमबाह्यरूपं विजानीयात्, तुशब्दो विशेषणार्थं, कथञ्चिन्नित्यानित्ये वस्तुनि सति व्यवहारो युज्यत इत्येतद्दर्शिनष्टि, तथाहि—सामान्यमन्वयिनमंशमाश्रित्य स्यान्नित्यमिति भवति, विशेषांश प्रतिक्षणमन्यथा च अन्यथा च नवपुराणादिदर्शनत स्यादनित्य इति भवति, तथोत्पादव्ययध्रौव्याणि चार्हद्दर्शनाश्रितानि व्यवहाराङ्गं भवति तथा चोक्तम्— घटमौलिसुवर्णा-

र्थी, नाशोत्पादस्थितिष्वयम् । शोकप्रमोदमाध्यस्थ्य, जनो याति सहेतुकम् ॥ १ ॥' इत्यादि । तदेवं नित्यानित्यपक्षयोर्व्यवहारो न विद्यते, तथाऽनयोरेवानाचार विजानीयादिति स्थितम् ॥ ३ ॥ तथा-ऽन्यमप्यनाचारं प्रतिषेद्धुकाम आह—

मूलम्—समुच्छिहिंति सत्थारो, सव्वे पाणा अणेलिसा ।
गंठिगा वा भविस्संति सासयन्ति व णो वए ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जइ ।
एएहि दोहिं ठाणेहिं अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।४,५।

टीका——सम्यक् निरवशेषतया 'उच्छेत्स्यन्ति' उच्छेद यास्यन्ति-क्षयं प्राप्स्यन्ति सामस्त्येनोत्-प्राबल्येन सेत्स्यन्ति वा सिद्ध यास्यन्ति, के ते ? शास्तार-तीर्थकृत सर्वज्ञास्तच्छासनप्रतिपन्ना वा 'सर्वे' निरवशेषाः सिद्धिगमनयोग्या भव्या', ततश्चोच्छिन्नभव्यं जगत्स्यादिति, शुष्कतर्काभिमानग्रहगृहीता युक्ति चाभिदधति—जीवसद्भावे सत्यप्यपूर्वोत्पादाभावादभव्यस्य च सिद्धिगमना-सभवात्कालस्य चाऽऽनन्त्यादनारतं सिद्धिगमनसभवेन तद्व्ययो-पपत्तेरपूर्वायाभावाद्भव्योच्छेद इत्येवं नो वदेत्, तथा सर्वेऽपि 'प्राणिनो' जन्तव' 'अनीदृशा' विसदृशा सदा परस्परविलक्षणा एव, न कथञ्चित्तेषां सादृश्यमस्तीत्येवमप्येकान्तेन नो वदेत्, यदिवा सर्वेषां भव्यानां सिद्धिसद्भावेऽवशिष्टा· संसारे 'अनीदृशा' अभव्या एव भवेयुरित्येवं च नो वदेत्, युक्ति चोत्तरत्र वक्ष्यति । तथा कर्मा-

त्मको ग्रन्थो येषां विद्यते ते ग्रन्थिका, सर्वेऽपि प्राणिन कर्मग्रन्थोपेता एव भविष्यन्तीत्येवमपि नो वदेत्, इदमुक्तं भवति—सर्वेऽपि प्राणिन सेत्स्यन्त्येव कर्मावृता वा सर्वे भविष्यन्तीत्येवमेकमपि पक्षमेकान्तिक नो वदेत्। यदिवा—'ग्रन्थिका' इति ग्रन्थिकसत्त्वा भविष्यन्तीति. ग्रन्थिभेदं कर्तुमसमर्था भविष्यन्तीत्येवं च नो वदेत्, तथा 'शाश्वता' इति शास्तार. 'सदा' सर्वकालं स्थायिनस्तीर्थकरा भविष्यन्ति 'न समुच्छेत्स्यन्ति' नोच्छेदं यास्यन्तीयेत्व नो वदेदिति ॥ ४ ॥ तदेव दर्शनाचारवादनिषेध वाङ्मात्रेण प्रदर्श्याधुना युक्तिं दर्शयितुकाम आह 'एतयो:' अनन्तरोक्तयो स्थानयो तद्यथा शास्तारः क्षयं यास्यन्तीति शाश्वता वा भविष्यन्तीति, यदिवा सर्वे शास्तारस्तद्दर्शनप्रतिपन्ना वा सेत्स्यन्ति शाश्वता वा भविष्यन्ति, यदिवा सर्वे प्राणिनो ह्यनीदृशा'—विसदृशा सदृशा वा तथा ग्रन्थिकसत्त्वास्तद्रहिता भविष्यन्तीत्येवमनयो· स्थानयोर्व्यवहरणं व्यवहारस्तदस्तित्वे युक्तेरभावान्न विद्यते, तथाहि--यत्तावदुक्त'सर्वे शास्तार क्षयं यास्यन्ती' त्येतदयुक्तं, क्षयनिबंधनस्य कर्मणोऽभावात्सिद्धानां क्षयाभाव, अथ भवस्थकेवल्यपेक्षयेदमभिधीयते, तदप्यनुपपन्न यतोऽनाद्यनन्तानां केवलिनां सद्भावात् प्रवाहापेक्षया तदभावाभाव । यदप्युक्तम्-'अपूर्वस्याभावे सिद्धिगमनसद्भावेन च भव्यसद्भावाद्भव्यशून्य जगत् स्या'दित्येतदपि सिद्धान्तपरमार्थावेदिनो वचनं, यतो भव्यराशे राद्धान्ते भविष्यत्कालस्येवानन्त्यमुक्तम्, तच्चैवमुपपद्यते यदि क्षयो न भवति, सति च तस्मिन् आनन्त्यं न स्यात्, नापि चावश्यं सर्व-

स्यापि भव्यस्य सिद्धिगमनेन भाव्यमित्यानन्त्याद्भव्यानां तच्छ्रम-
भ्यभावाद्योग्यदलिकप्रतिभावत्तदनुपपत्तिरिति । तथा नापि शाश्व-
ता एव भवस्थकेवलिनां शास्त्रीणां सिद्धिगमनसद्भावात्प्रवाहापेक्षया
च शाश्वतत्वमत कथञ्चिच्छाश्वता कथञ्चिदशाश्वता इति । तथा
सर्वेऽपि प्र णिनो विचित्रकर्मसद्भावान्नानागतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गादि-
समन्वितत्वादनीदृशा — विसदृशास्तथोपयोगासंख्येयप्रदेशत्वामूर्त-
त्वादिभिर्धर्मैं कथञ्चित्सदृशा इति, तथोल्लसितसद्वीर्यतया केचिद्भि-
न्नग्रन्थयोऽपरे च तथाविधपरिणामाभावाद् ग्रन्थिकसत्त्वा एव भव-
न्तीत्येवं च व्यवस्थिते नैकान्तेनैकान्तपक्षो भवतीति प्रतिषिद्धः, तदे-
वमेतयोरेव द्वयो स्थानयोरुक्तनीत्याऽनाचार विजानीयादिति स्थि-
तम् । अपि च—आगमे अनन्तानन्तास्वप्युत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु
भव्यानामनन्तभाग एव सिद्ध्यतीत्ययमर्थं प्रतिपाद्यते, यदा चैवम्भूतं
तदानन्त्य तत्कथं तेषां क्षय । युक्तिरप्यत्र—सम्बन्धिशब्दावेतौ, मुक्तिः
संसारं विना न भवति, संसारोऽपि न मुक्तिमन्तरेण, ततश्च भव्यो-
च्छेदे संसारस्याप्यभाव स्यादतोऽभिधीयते नानयोर्व्यवहारो युज्यत
इति ॥ ५ ॥ अधुना चारित्राचारमगीकृत्याह—

मूलम्—जे केइ खुद्दगा पाणा, अदुवा सन्ति महालया ।
सरिसं तेहिं वेरंति, असरिसन्ती य णा वदे ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो न विज्जई ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायार तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।६,७॥

टीका—ये केचन क्षुद्रका सत्त्वा-प्राणिन एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादयो-

ऽल्पकाया वा पञ्चेन्द्रिया अथवा 'महालया' महाकाया· 'सन्ति' विद्यन्ते तेषां च क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुन्थ्वादीनां महानालय — शरीर येषां ते महालया—हस्त्यादयस्तेषां च व्यापादने सदृशं 'वैर' मिति वज्र' कर्म विरोधलक्षण वा वैरं तत् 'सदृश' समान तुल्य-प्रदेशत्वात्सर्वजन्तूनामित्येवमेकान्तेन नो वदेत् तथा 'विसदृशम्'-असदृशं तद्व्यापत्तौ वैरं कर्मबन्धो विरोधो वा इन्द्रियविज्ञानकायानां विसदृशत्वात् सत्यपि प्रदेशतुल्यत्वे न सदृश वैरमित्येवमपि नो वदेत्, यदि हि वध्यापेक्ष एव कर्मबन्ध स्यात्तदा तत्वशात्कर्मणोऽपि सादृश्यमसादृश्यं वा वक्तु युज्येत् न च तद्वशादेव बन्धः अपि त्वध्यवसायवशादपि, ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्पकायसत्त्वव्यापादनेऽपि महद्वैरम्, अकामस्य तु महाकायसत्त्वव्यापादनेऽपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥ एतदेव सूत्रेणैव दर्शयितुमाह— आभ्यामनन्तरोक्ताभ्यां स्थानाभ्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पकायमहाकायव्यापादनापादितकर्मबन्धसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरण व्यवहारो नियुक्तिकत्वान्न युज्यते, तथाहि—न वध्यस्य सदृशत्वमसदृशत्वं चैकमेव कर्मबन्धस्य कारणम्, अपितु वधकस्य तीव्रभावो मन्दभावो ज्ञानभावोऽज्ञानभावो महावीर्यत्वमल्पवीर्यत्व चेत्येतदपि । तदेव वध्यवधकयोर्विशेषात्कर्मबन्धविशेष इत्येव व्यवस्थिते वध्यमेवाश्रित्य सदृशत्वासदृशत्वव्यवहारो न विद्यत इति । तथाऽनयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्यानाचारं विजानीयादिति, तथाहि—यज्जीवसाम्यात्कर्मबन्धसदृशत्वमुच्यते, तदयुक्त, यतो न हि जीवव्यापत्त्या हिंसोच्यते, तस्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमश-

न्यत्वाद्, अपि त्विन्द्रियादिव्यापत्त्या, तथा चोक्तम्—"पंचेन्द्रियाणि त्रिविधं बल च, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायु। प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषा वियोजीकरण तु हिंसा ॥१॥" इत्यादि। अपि च भावसव्यपेक्षस्यैव कर्मबन्धोऽभ्युपेतुं युक्त, तथाहि-वैद्यस्यागम-सव्यपेत्तस्य सम्यक् क्रिया कुर्वतो यद्यप्यातुरविपत्तिर्भवति तथापि न वैरानुषङ्गो भावदोषाभावाद्, अपरस्य तु सर्पबुद्धया रज्जुमपि घ्नतो भावदोषात्कर्मबन्धः, तद्रहितस्य तु न बन्ध इति, उक्तं चागमे 'उच्चालियंमि पाए', इत्यादि तण्डुलमत्स्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव तदेवंविधवध्यवधकभावापेक्षया स्यात् सदृशत्वं स्यादसदृशत्वमिति अन्यथाऽनाचार इति ॥७॥

पुनरपि चारित्रमधिकृत्याहारविषयानाचाराचारौ प्रतिपादयितु-काम आह—

मूलम्— अहा कम्माणि भुंजंति, अण्णमण्णे सकम्मुणा।
उवलित्ते ति जाणिज्जा अणुवलित्तेति वा पुणो॥
एएहिं दोहिं ठाणेहि, ववहारो ण विज्जई।
एएहि दोहिं ठाणेहि अणायार तु जाणए॥

— श्री सूयगडाग सूत्र ॥२।५।८,९॥

टीका—साधु प्रधानकारणमाधाय—आश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि, तानि च वस्त्रभोजनवसत्यादीन्युच्यन्ते, एतान्याधाकर्माणि ये भुञ्जन्ते — एतैरुपभोग ये कुर्वन्ति 'अन्योऽन्य' परस्पर तान् स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तान् विजानीयादित्येवं नो वदेत् तथाऽनुपलिप्तानिति वा नो वदेत्, एतदुक्तं भवति—आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमितिकृत्वा भुञ्जान

कर्मणा नोपलिप्यते तदाधाकर्मोपभोगेनावश्यतया कर्मबन्धो भवतीत्येवं नो वदेत्, तथा श्रुतोपदेशमन्तरेणाहारगृद्ध्याऽऽधाकर्म भुञ्जानस्य तन्निमित्तकर्मबन्धसद्भावात् अतोऽनुलिप्तानपि नो वदेत्, यथावस्थितमौनीन्द्रागमज्ञस्य त्वेवं युज्यते वक्तुम्—आधाकर्मोपभोगेन स्यात्कर्मबन्ध स्यान्नेति, यत उक्तम्—"किंचिच्छुद्ध कल्प्यमकल्प्यं वा, स्यादकल्प्यमपि कल्प्यम्। पिण्डः शय्या वस्त्रं पात्रं वा भेषजाद्यं वा ॥१॥" तथान्यैरप्यभिहितम्—"उत्पद्येत हि साऽवस्था, देशकालामयान्प्रति। यस्यामकार्यं, कार्यं स्यात्कर्म कार्यं च वर्जयेद् ॥ १ ॥" इत्यादि ॥ ८ ॥ किमित्येवं स्याद्वादः प्रतिपाद्यत इत्याह—आभ्यां द्वाभ्या स्थानाभ्यामाश्रिताभ्यामनयोर्वा स्थानयोराधाकर्मोपभोगेन कर्मबन्धभावाभावभूतयोर्व्यवहारो न विद्यते, तथाहि—यद्यवश्यमाधाकर्मोपभोगेनैकान्तेन कर्मबन्धोऽभ्युपगम्येत एवं चाहाराभावेनाऽपि क्वचित्सुतरामनर्थोदय स्यात्, तथाहि—क्षुत्प्रपीडितो न सम्यगीर्यापथं शोधयेत् ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्दमपि कुर्यात् मूर्च्छादिसद्भावतया च देहपाते सत्यवश्यंभावी त्रसादिव्याघातोऽकालमरणे चाविरतिरङ्गीकृता भवत्यार्तध्यानापत्तौ च तिर्यग्गतिरिति, आगमश्च—"सव्वत्थ सजम सजमाओ अप्पाणमेव रक्खेज्जा" इत्यादिनाऽपि तदुपभोगे कर्मबन्धाभाव इति तथाहि—आधाकर्मण्यपि निष्पाद्यमाने षड्जीवनिकायवधस्तद्वधे च प्रतीत कर्मबन्ध इत्यतोऽनयो स्थानयोरेकान्तेनाश्रीयमाणयोर्व्यवहरणं व्यवहारो न युज्यते, तथाऽऽभ्यामेव स्थानाभ्या समाश्रिताभ्या सर्वमनाचार विजानी-

यादिति स्थितम् ॥६॥

पुनरप्यन्यथा दर्शन प्रति वागनाचार दर्शयितुमाह—

मूलम्—जमिदं ओरालमाहार, कम्मग च तहेव य (तमेवतं)
सव्वत्थ वीरिय अत्थि, णत्थि सव्वत्थ वीरिय ॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।१०,११॥

टीका—यदि वा योऽयमनन्तरमाहार प्रदर्शित स सति शरीरे भवति शरीर च पञ्चधा तस्य चौदारिकादे शरीरस्य भेदाभेदं प्रतिपादयितुकाम पूर्वपक्षद्वारेणाह—'जमिद' मित्यादि, यदिद—सर्वजनप्रत्यक्षमुदारै पुद्गलैर्निर्वृत्तमौदारिकमेतदेवौराल निस्सारत्वाद् एतच्च तिर्यङ्मनुष्याणा भवति, तथा चतुर्दशपूर्वविदा कचित्संशया-दावाह्रियत इत्याहारम्, एतद्ग्रहणाच्च वैक्रियापादानमपि द्रष्टव्य, तथा कर्मणा निर्वृत्तं कार्मणम्, एतत्सहचरित तैजसमपि ग्राह्यम् । औदारिकवैक्रियाहारकाणां प्रत्येक तैजसकार्मणाभ्या सह युगपदु-पलब्धे कस्यचिदेकत्वाऽऽशङ्का स्यादतस्तदपनोदार्थ तदभिप्राय-माह—'तदेवतद' यदेवौदारिक शरीर ते एव तैजसकार्मणे शरीरे, एव वैक्रियाहारकयोरपि वाच्य, तदेवभूता सज्ञा नो निवेशयेदित्युत्त-रश्लोके क्रिया, तथैतेषामात्यन्तिको भेद इत्येवभूतामपि सज्ञा नो निवेशयेत् । युक्तिश्चात्र—यद्येकान्तेनाभेद एव तत इदमौदारिक-मुदारपुद्गलनिष्पन्न तथैतत्कर्मणा निर्वर्त्तित कार्मण सर्वस्यैतस्य

संसारचक्रवालभ्रमणस्य कारणभूत तेजोद्रव्यनिष्पन्नं तेज एव तैजसं आहारपक्तिनिमित्त तैजसलब्धिनिमित्त चेत्येव भेदेन सञ्ज्ञानिरुक्त' कार्यं च न स्यात् अथात्यन्तिका भेद एव ततो घटवद्भिन्नयोर्देशकालयोरप्युपलब्धि स्यात्, न नियता युगपदुलब्धि-रिति एव च व्यवस्थिते कथञ्चिदेकोपलब्धेरभेद कथञ्चिच्च सञ्ज्ञा-भेदाद्भेद इति स्थितं। तदेवमौदारिकादीनां शरीराणां भेदाभेदौ प्रदर्श्याधुना सर्वस्यैव द्रव्यस्य भेदाभेदौ प्रदर्शयितुकाम पूर्वपक्ष श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयितुमाह—'सव्वत्थवीरियमिच्चादि, सर्व सर्वत्र विद्यते' इतिकृत्वा सांख्याभिप्रायेण सत्त्वरजस्त-मोरूपस्य प्रधानस्यैकत्वात्तस्य च सर्वस्यैव कारणत्वात् अत सर्वं सर्वात्मकमित्येवं व्यवस्थिते 'सर्वत्र' घटपटादौ अपरस्य—व्यक्तस्य 'वीर्य' शक्तिर्विद्यते, सर्वस्यैव हि व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वाद् अतः सर्वस्य सर्वत्र वीर्यमस्तीत्येवं सञ्ज्ञां नो निवेशयेत्, तथा 'सर्वे भावा स्वभावेन स्वस्वभावव्यवस्थिता' इति प्रतिनियतशक्तित्वान्न सर्वत्र सर्वस्य 'वीर्यं' शक्तिरित्येवमपि सञ्ज्ञां नो निवेशयेत्। युक्तिश्चात्र—यत्ताव-दुच्यते 'साख्याभिप्रायेण सर्वं सर्वात्मकं देशकालाकारप्रतिबधात्त न समानकालोपलब्धि' रिति, तदयुक्त ,यतो भेदेन सुखदु खजीवित-मरणदूरासन्नसूक्ष्मबादरकुरूपादिकं ससारवैचित्र्यमध्यक्षेणानु-भूयते, न च दृष्टेऽनुपपन्न नाम, न च सर्व मिथ्येत्यभ्युपपत्तुं युज्यते, यतो दृष्टहानिरदृष्टकल्पना च पापीयसी। किंच—सर्व-

थैक्येऽभ्युपगम्यमाने ससारमोक्षाभावतया कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्च बलादापतति, यच्चैतत् सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति प्रधानमित्येतत्सर्वस्यास्य जगत कारणं तन्निरन्तरा सुहृद प्रत्येष्यन्ति, निर्युक्तिकत्वाद्, अपिच--सर्वथा सर्वस्य वस्तुन एकत्वेऽभ्युपगम्यमाने सत्त्वरजस्तमसामप्येकत्व स्यात्, तद्भेदे च सर्वस्य तद्वदेव भेद इति । तथा यदप्युच्यते—'सर्वस्य व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्सत्कार्यवादाच्च मयूराण्डकरणे चञ्चुपिच्छादीनां सतामेवोत्पादाभ्युपगमाद् असदुत्पादे चाम्रफलादीनामप्युत्पत्ति-प्रसङ्गा' दित्येतद्वाङ्मात्रं, तथाहि--यदि सर्वथा कारणे कार्यमस्ति न तह्युत्पादो निष्पन्नघटस्यैव, अपि च मृत्पिडावस्था-यामेव घटगता कर्मगुणव्यपदेशा भवेयु. न च भवन्ति, ततो नास्ति कारणे कार्यम्, अथानभिव्यक्तमस्तीति चेन्न तर्हि सर्वात्मना विद्यते, नाप्येकान्तेनासत्कार्यवाद एव, तद्भावे हि व्योमारविन्दानामप्येकान्तेनासता मृत्पिण्डादेर्घटादेरिवोत्पत्ति स्यात न चैतद्दृष्टमिष्टं वा, अपि च—एव सर्वस्य सर्वस्मादुत्पत्ते कार्य-कारणभावानियम स्याद्, एवं च न शाल्युङ्करार्थी शालीबीजमे-वादद्यात् अपितु यत्किचिदेवेति, नियमेन च प्रेक्षापूर्वकारिणामुपा-दानकारणादौप्रवृत्ति , अतो नासत्कार्यवाद इति । तदेव सर्वपदार्थानां सत्त्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादिभिर्धर्मै कथञ्चिदेकत्व तथा प्रतिनियतार्थ-कार्यतया यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थेन' सदितिकृत्वा कथञ्चि-द्भेद इति सामान्यविशेषात्मक वस्त्विति स्थितम् । अनेन च स्यादस्ति स्यान्नास्तीतिभङ्गकद्वयेन शेषभङ्गका अपि द्रष्टव्या

ततश्च सर्वं वस्तु सप्तभङ्गीस्वभाव, ते चामी—स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-भावापेक्षया स्यादस्ति, परद्रव्याद्यपेक्षया स्यान्नास्ति, अनयोरेव धर्मयोर्यौगपद्येनाभिधातुमशक्यत्वात्स्यादवक्तव्य, तथा कस्यचिदंशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्कस्यचिच्चांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात् स्यादस्ति च स्यान्नास्ति चेति, तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु सामस्त्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्ति चावक्तव्य चेति, तथैकस्यांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु सामस्त्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात् स्यान्नास्ति चावक्तव्यं चेति, तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु परद्रव्याद्यपेक्षयाऽन्यस्य तु यौगपद्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं चेति, इय च सप्तभङ्गी यथायोगमुत्तरत्रापि योजनीयेति ॥१०॥११॥

तदेव सामान्येन सर्वस्यैव वस्तुनो भेदाभेदौ प्रतिपाद्याधुना सर्वशून्यवादिमतनिरासेन लोकालोकयो प्रविभागेनास्तित्वं प्रतिपादयितुकाम आह—यदि वा सर्वत्र 'वीर्य' मित्यनेन सामान्येन वस्त्वस्तित्वमुक्त, तथाहि——सर्वत्र वस्तुनो 'वीर्य' शक्तिरर्थक्रियासामर्थ्यमन्तश स्वविषयज्ञानोत्पादन, तच्चैकान्तेनात्यन्ताभावाच्छशविषाणादेरप्यस्तीत्येव संज्ञा न निवेशयेत्, सर्वत्र वीर्यं नास्तीति नो एव संज्ञां निवेशयेदिति, अनेनाविशिष्ट वस्त्वस्तित्वं प्रसाधितम्, इदानीं तस्यैव वस्तुन ईषद्विशेषितत्वेन लोकालोकरूपतयाऽस्तित्वं प्रसाधयन्नाह——

मूलम्-णत्थि लोए अलोए वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थिलोए अलोए वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

णत्थि जीवा अजीवा वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि जीवा अजीवा वा, एवं सन्नं निवेसए॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।१२, १३॥

टीका—'लोक. चतुर्दशरज्ज्वात्मको धर्माधर्माकाशादिपञ्चा रितकायात्मको वा स नास्तीत्येवं सज्ञां नो निवेशयेत्। तथा· ऽऽकाशास्तिकायमात्रकस्त्वलोक' स च न विद्यते एवेत्येव सज्ञां नो निवेशयेत्। तदभावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं, तद्यथा—प्रतिभास मानं वस्त्ववयवद्वारेण वा प्रतिभासेतावयविद्वारेण वा ?, तत्र न तावदवयवद्वारेण प्रतिभासनमुत्पद्यते, निरंशपरमाणूनां प्रति· भासनासंभवात्, सर्वारातीयभागस्य च परमाण्वात्मकत्वात्तेषां च छद्मस्थविज्ञानेन द्रष्टुमशक्यत्वात्, तथा चोक्तम्—"यावद्दृश्य परस्तावद्भाग. स च न दृश्यते। निरंशस्य च भागस्य, नास्ति छद्मस्थदर्शनम्"॥१॥ इत्यादि नाप्यवयविद्वारेण, विकल्पमानस्यावयविन एवाभावात्, तथाहि—असौ स्वावयवेषु प्रत्येक सामस्त्येन वा वर्त्तेत ? अशांशिभावेन वा ? न सामस्त्येना· वयविबहुत्वप्रसङ्गात्, नाप्यंशेन पूर्वविकल्पानतिक्रमेणानवस्था· प्रसङ्गात्, तस्माद्विचार्यमाणं न कथञ्चिद्वस्त्वात्मभावं लभते, तत. सर्वमेवैतन्मायास्वप्नेन्द्रजालमरुमरीचिकाविज्ञानसदृश, तथा चोक्त—'यथा यथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते, विविच्यन्ते तथा तथा। यद्येत (तत्) स्वयमर्थेभ्यो, रोचन्ते (ते) तत्र के वयम् ?॥१॥" इत्यादि तदेवं वस्त्वभावे तद्विशेषलोकालोकाभावः सिद्ध एवेत्येवं नो संज्ञां

निवेशयेत्। किन्त्वस्ति लोक ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपो वैशाखस्थानस्थितकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषसदृश पंचास्तिकायात्मको वा, तद्व्यतिरिक्तश्चालोकोऽप्यस्ति, संबन्धिशब्दत्वात्, लोकव्यवस्थाऽन्यथाऽनुपपत्तेरिति भाव, युक्तिश्चात्र—यदि सर्वं नास्ति तत सर्वान्तःपातित्वात्प्रतिषेधकोऽपि नास्तीत्यतस्तदभावात्प्रतिषेधाभाव, अपि च—सति परमार्थभूते वस्तुनि मायास्वप्नेन्द्रजालादिव्यवस्था: अन्यथा किमाश्रित्य को वा मायादिकं व्यवस्थापयेदिति ? । अपि च—"सर्वाभावो यथाभीष्टो, युक्त्यभावे न सिद्ध्यति । साऽस्ति चेत्सैव नस्तत्त्व, तत्सिद्धौ सर्वमस्तु सद् ॥ १ ॥" इत्यादि । यदप्यवयवावयविविभागकल्पनया दूषणमभिधीयते तदप्यार्हतमतानभिज्ञेन; तन्मतं त्वेवभूतं, तद्यथा—नैकान्तेनावयवा एव नाप्यवयव्येव चेत्यत. स्याद्वादाश्रयणात्पूर्वोक्तविकल्पदोषानुपपत्तिरित्यत. कथञ्चिल्लोकोऽस्त्येवमलोकोऽपीति स्थितम् ॥ १२ ॥ तदेव लोकालोकास्तित्व प्रतिपाद्याधुना तद्विशेषभूतयोर्जीवाजीवयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह—'णत्थिजीवा अजीवे' त्यादि, जीवा उपयोगलक्षणा' ससारिणो, मुक्ता वा तेन विद्यते, तथा अजीवाश्च धर्माधर्माकाशपुद्गलकालात्मका गतिस्थित्यवगाहदानच्छायातपोद्योतादिवर्त्तनालक्षणा न विद्यन्त, इत्येव संज्ञां—परिज्ञान नो निवेशयेत्, नास्तित्वनिबंधन त्विदं—प्रत्यक्षेणानुपलभ्यमानत्वाज्जीवा न विद्यन्ते, कायाकारपरिणतानि भूतान्येव धावनवल्गनादिकां क्रियां कुर्वन्तीति । तथाऽऽत्माद्वैतवादमताभि·

प्रायेण 'पुरुष एवेदं ग्नि सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्य' मित्यागमात् तथा अजीवा न विद्यन्ते सर्वस्यैव चेतनाचेतनरूपस्यात्ममात्र विवर्त्तत्वात् नो एवं सञ्ज्ञां निवेशयेत्, किन्त्वस्ति जीवः सर्वस्या स्य सुखदुःखादेर्निबन्धनभूतः स्वसंवित्तिसिद्धोऽहम्प्रत्ययग्राह्य, तथा तद्व्यतिरिक्ता धर्माकाशपुद्गलादयश्च विद्यन्ते, सकलप्राण्यध्येष्ठेन प्रत्यक्षानुभूयमानत्वात्तद्गुणानां, भूतचैतन्यवादी च वाच्य——किं तानि भवदभिप्रेतानि भूतानि नित्यान्युतानित्यानि ? यदि नित्यानि ततोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वान्न कायाकारपरिणति, नापि प्रागविद्यमानस्य चैतन्यस्य सद्भावो, नित्यत्वहानेः। अथानित्यानि कि तेष्वविद्यमानमेव चैतन्यमुत्पद्यते आहोस्विद्विद्यमानं ? न तावदविद्यमानमतिप्रसङ्गाद्, अभ्युपेतागमलोपाद्वा, अथ विद्यमानमेव सिद्धं तर्हि जीवत्वम्। तथाऽऽत्माद्वैतवाद्यपि वाच्य——यदि पुरुषमात्रमेवेदं सर्वं कथं घटपटादिषु चैतन्य नोपलभ्यते ?, तथा तदैक्येऽभेदनिबन्धनानां पक्षहेतुदृष्टान्तानाम भावात्साध्यसाधनाभावः, तस्मान्नैकान्तेन जीवाजीवयोरभाव, अपितु सर्वपदार्थानां स्याद्वादाश्रयणाज्जीव स्याज्जीव स्यादजीव, अजीवोऽपि च स्यादजीव स्याज्जीव इति, एतच्च स्याद्वादाश्रयण जीवपुद्गलयोरन्योऽन्यानुगतयो शरीरप्रत्यक्षतयाऽध्यक्षेणैवोपलम्भा द्द्रष्टव्यमिति ॥ १३ ॥

जीवास्तित्वे च सिद्धे तन्निबन्धनयो सदसत्क्रियाद्वारायात योर्धर्माधर्मयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह —

मूलम्—णत्थि धम्मे अधम्मे वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि धम्मे अधम्मे व, एवं सन्नं निवेसए॥
णत्थि बंधे व मोक्खे वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि बन्धे व मोक्खे वा, एवं सन्नं निवेसए॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।१४,१५॥

टीका—'धर्म.' श्रुतचारित्रात्मको जीवस्यात्मपरिणाम. कर्मक्षयकारणम् एवमधर्मोऽपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगरूप: कर्मबन्धकारणमात्मपरिणाम एव, तावेवभूतौ धर्माधर्मौ कालस्वभाव· नियतीश्वरादिमतेन न विद्येते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्——कालादय एवास्य सर्वस्य जगद्वैचित्र्यस्य धर्माधर्मव्यतिरेकेणैकान्तत· कारणमित्येवमभिप्राय न कुर्याद्, यत त एवैकका न कारणमपि तु समुदिता एवेति, तथा चोक्तम्—"न हि कालादीहिंतो केवलएहिंतो जायए किंचि। इह मुग्गरंधणाइवि ता सव्वे समुदिया हेऊ ॥१॥" इत्यादि। यतो धर्माधर्मान्तरेण संसारवैचित्र्य न घटामियर्त्यतो· ऽस्ति धर्म.——सम्यग्दर्शनादिकोऽधर्मश्च—मिथ्यात्वादिक इत्येवं सञ्ज्ञां निवेशयेदिति ॥ १४ ॥ सतोश्च धर्माधर्मयोर्बन्धमोक्षसद्भाव इत्येतद्दर्शयितुमाह——बन्ध.——प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशात्मकतया कर्मपुद्गलानां जीवेन स्वव्यापारत स्वीकरण स चामूर्तस्यात्मनो गगनस्येव न विद्यत इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत्, तथा तदभावाच्च मोक्षस्याप्यभाव इत्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत्। कथं तर्हि सञ्ज्ञां निवेशयेदित्युत्तरार्द्धेन दर्शयति· अस्ति बन्ध कर्म पुद्गलैर्जीवस्येवं सञ्ज्ञां

निवेशयेदिति—यत्तूच्यते—अमूर्त्तस्य मूर्तिमता सम्बन्धो न युज्यत इति तदयुक्तम्, आकाशस्य सर्वव्यापितया पुद्गलैरपि सम्बन्धो दुर्निवार्य., तदभावे तद्व्यापित्वमेव न स्याद् अन्यच्च अस्य विज्ञानस्य हृत्पूरमदिरादिना विकार. समुपलभ्यते न चासौ सम्बन्ध. मृते अतो यत्किंचिदेतत् । अपि च—ससारिणामसुमतां सदा तैजसकार्मणशरीरसद्भावादात्यन्तिकममूर्त्तत्व न भवतीति । तथा तत्प्रतिपक्षभूतो मोक्षोऽप्यस्ति, तदभावे बन्धस्याप्यभाव स्यादित्यतो ऽशेषबन्धनापगमस्वभावो मोक्षोऽस्तीत्येव च सज्ञां निवेशयेदिति ॥ १५ ॥

बन्धसद्भावे चावश्य भावीपुण्यपापसद्भाव इत्यतस्तदभाव निषेधद्वारेणाह—

मूलम्—णत्थि पुण्णे व पावे वा, णेव सन्न निवेसए ।
अत्थि पुण्णे व पावे वा, एव सन्नं निवेसए ॥
णत्थि आसवे संवरे वा, णेदं सन्न निवेसए ।
अत्थि आसवे संवरे वा, एव सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।१६,१७॥

टीका—'नास्ति' न विद्यते पुण्य, शुभकमप्रकृति. लक्षणं तथा 'पाप' तद्विपर्ययलक्षणं 'नास्ति' न विद्यते इत्येव सज्ञा नो निवेशयेत् । तदभावप्रतिपात्तनिबन्धनं त्विद—तत्र केषाञ्चि न्नास्ति पुण्यं, पापमेव ह्युत्कर्षावस्थं सत्सुखदुःखनिबन्धत, तथा परेषां पाप नास्ति, पुण्यमेव ह्यपचीयमानं पापकार्य कुर्यादिति, अन्येषां तूभयमपि नास्ति, संसारवैचित्र्यं तु नियतिस्वभावादिकृत

तदेतदयुक्तं, यत पुण्यपापशब्दौ सम्बन्धिशब्दौ सम्बधिशब्दानामेकांशस्य सत्ताऽपरसत्तानान्तरीयका अतो नैकतरस्य सत्तेति, नाप्युभयाभाव:, शक्यते वक्तु, निर्निबन्धनस्य जगद्वैचित्र्यस्याभावात्, न हि कारणमन्तरेण क्वचित्कार्यस्योत्पत्तिदृष्टा, नियतिस्वभावादिवादस्तु नष्टोत्तराणां पादप्रसारिकाप्राय:, अपि च—तद्वादेऽभ्युपगम्यमाने सकलक्रियावैयर्थ्यं तत एव सकलकार्योत्पत्तेरित्यतोऽस्ति पुण्य पाप चेत्येव सज्ञां निवेशयेत् । पुण्यपापे चैवंरूपे, तद्यथा—"पुद्गलकर्म शुभ यत्तत्पुण्यमिति जिनशासने दृष्टम् । यदशुभमथ तत्पापमिति भवति सर्वज्ञनिर्दिष्टम् ॥१॥" इति ॥१६॥

न कारणमन्तरेण कार्यस्योत्पत्तिरत पुण्यपापयो· प्रागुक्तयोः कारणभूतावाश्रवसवरौ तत्प्रतिषेधनिषेधद्वारेण दर्शयितुकाम आह—आश्रवति—प्रविशति कर्म येन स प्राणातिपातादिरूप आश्रव:—कर्मोपादानकारणं, तथा तन्निरोध. संवर: एतौ द्वावपि न स्त इत्येवं सज्ञां नो निवेशयेत्, तदभावप्रतिपत्त्याशंकाकारण त्विद—कायवाङ्मन: कर्मयोग· स आश्रव इति, यथेदमुक्त तथेदमप्युक्तमेव—'उच्चालियम्मि पाए' इत्यादि, ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबन्धो न भवतीति, युक्तिरपि—किमयमाश्रव आत्मनो भिन्न उताभिन्न: ? यदि भिन्नो नासावाश्रवो घटादिवद्, अभेदेऽपि नाश्रवत्वम्, सिद्धात्मनामपि आश्रव प्रसङ्गात्, तदभावे च तन्निरोधलक्षणस्य सवरस्याप्यभाव· सिद्ध एवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात् । यतो यत्तदनैकान्तिकत्वं कायव्यापारस्य 'उच्चालियम्मि पाए' इत्यादि·

नोक्तं तदस्माकमपि संगतमेव, यतो नह्यस्माभिरप्युपयुक्तस्य कर्मबन्धोऽभ्युपगम्यते, निरुपयुक्तस्य त्वस्त्येव कर्मबन्धः, तथाभेदाभेदोभयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोषाभाव इत्यस्त्याश्रवसद्भाव, तन्निरोधश्च संवर इति, उक्तं च—"योग शुद्ध पुण्याश्रवस्तु-पापस्य तद्विपर्यास । वाक्कायमनो गुप्तिर्निराश्रव संवरस्तूक्त ॥१॥" इत्यतोऽस्त्याश्रवस्तथा संवरश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १७ ॥

आश्रवसंवरसद्भावे चावश्यभावी वेदनानिर्जरासद्भाव इत्यतस्तं (तत्) प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह—

मूलम्—णत्थि वेयणा णिज्जरा वा, णेव सन्नं निवेसए ।
अत्थि वेयणा णिज्जरा वा, एवं सन्नं निवेसए ॥
णत्थि किरिया अकिरिया वा, णेव सन्नं निवेसए ।
अत्थि किरिया अकिरिया वा, एव सन्नं निवेसए॥
—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥२।५।१८, १६ ॥

टीका—वेदना—कर्मानुभवलक्षणा तथा निर्जरा—कर्म पुद्गलशाटनलक्षणा एते द्वे अपि न विद्येते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदभावं प्रत्याशंकाकारणमिदं, तद्यथा—पल्योपमसागरोपम-शतानुभवनीयं कर्मान्तर्मुहूर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यभ्युपगमात्, तदुक्तम्—"जं अण्णाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं । तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥ १ ॥" इत्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां च झटित्येवं कर्मणो भस्मीकरणाद्यथाक्रमबद्धस्य चानुभवनाभावे वेदनाया अभाव तदभावाच्च निर्जराया अपी-

त्येवं नो संज्ञां निवेशयेत्। किमिति ? यत कस्यचिदेव कर्मण एवमनन्तरोक्तया नीत्या क्षपणात्तपसा प्रदेशानुभवेन च अपरस्य तूदयोदीरणाभ्यामनुभवनमित्यतोऽस्ति वेदना, यत आगमोऽप्येवंभूत एव, तद्यथा—"पुव्विं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिकंताणं कम्माणं वेइत्ता मोक्खो, णत्थि अवेइत्ता" इत्यादि, वेदना सिद्धौ च निर्जराऽपि सिद्धैवेत्यतोऽस्ति वेदना निर्जरा चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १८ ॥

वेदनानिर्जरे च क्रियाऽक्रियायत्ते, ततस्तत्सद्भावं प्रतिषेधनिषेधपूर्वकं दर्शयितुमाह—क्रियापरिस्पन्दलक्षणा तद्विपर्यस्ता त्वक्रिया, ते द्वे अपि 'न स्तो', न विद्येते,—तथाहि—सांख्यानां सर्वव्यापित्वादात्मन आकाशस्यैव परिस्पन्दात्मिका क्रिया न विद्यते, शाक्यानां तु क्षणिकत्वात्सर्वपदार्थानां प्रतिसमयमन्यथा चान्यथा चोत्पत्तेः पदार्थसत्तैव, न तद्व्यतिरिक्ता काचित्क्रियाऽस्ति, तथा चोक्तम्—"भूतिर्यैषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते" इत्यादि, तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थान्तरगमनात्सक्रियत्वमतोऽक्रिया न विद्यते, इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्, किं तर्हि, अस्ति क्रिया अक्रिया चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत्, तथाहि—शरीरात्मनोर्देशाद्देशान्तरावाप्तिर्निमित्ता, परिस्पन्दात्मिका क्रिया प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यते, सर्वथा निष्क्रियत्वे चात्मनोऽभ्युपगम्यमाने गगनस्येव बन्धमोक्षाद्यभाव, स च दृष्टेष्टबाधित., तथा शाक्यानामपि प्रतिक्षणोत्पत्तिरेव क्रियेत्यतः कथं क्रियाया अभाव ? अपि च—एकान्तेन क्रियाऽभावे संसारमोक्षा-

भाव स्यादित्यतोऽस्ति क्रिया, तद्विपक्षभूता चाक्रियेत्येवं सज्ञा निवेशयेदिति ॥ १९ ॥

तदेवं सक्रियात्मनि सति क्रोधादिसद्भाव इत्येतद्दर्शयितुमाह—

मूलम्—णत्थि कोहे व माणे वा, णेव सन्न निवेसए।
अत्थि कोहे व माणे वा एवं सन्नं निवेसए॥
णत्थि माया व लोभे वा, णेव सन्नं निवेसए।
अत्थि माया व लोभे वा, एव सन्नं निवेसए॥
णत्थि पेज्जे व दोसे वा, णेव सन्न निवेसए।
अत्थि पेज्जे व दोसे वा, एव सन्नं निवेसए॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥ २।५।२०,२१,२२॥

टीका—स्वपरात्मनोरप्रतीतिलक्षण क्रोध, स चानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसज्वलनभेदेन चतुर्धाऽऽगमे पठ्यते, तथैतावद्भेद एव मानो गर्व, एतौ द्वावपि 'न स्तो' न विद्यते, तथाहि—क्रोध केपाञ्चिन्मतेन मानांश एव अभिमानग्रहगृहीतस्य तत्कृतावत्यन्तक्रोधोदयदर्शनात्, क्षपकश्रेण्यां च भेदेन क्षपणानभ्युपगमात्, तथा किमयमात्मधर्म आहोस्वित्कर्मण उतान्यस्येति ? तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसङ्ग, अथ कर्मणस्ततस्तदन्यकपायोदयेऽपि तदुदयप्रसङ्गात् मूर्तत्वाच्च कर्मणो घटस्येव तदाकारोपलब्धि स्यात् अन्यधर्मत्वे त्वकिञ्चित्करत्वमतो नास्ति क्रोध इत्येव मानाभावोऽपि वाच्य इत्येवं संज्ञा नो निवेशयेत, यत कपायकर्मोदयवर्ती दष्टोष्ठ कृतभ्रुकुटी-

भङ्गो रक्तवदनो गलत्स्वेदबिन्दुसमाकुल क्रोधाध्मातः समुपलभ्यते, न चासौ मानांश, तत्कार्याकरणात् यथा परनिमित्तोत्थापितत्वाच्चेति, तथा जीवकर्मणोरुभयोरप्ययं धर्म, तद्धर्मत्वे च प्रत्येकविकल्पदोषानुपपत्ति, अनभ्युपगमान्, ससार्यात्मनां कर्मणा सार्द्धं पृथग्भवनाभावात्तदुभयस्य च नरसिंहवद्वर्गान्तरत्वादित्यतोऽस्ति क्रोधो मानश्चेत्येव सज्ञा निवेशयेत् ॥ २० ॥ साम्प्रतं मायालोभयोरस्तित्व दर्शयितुमाह—अत्रापि प्राग्वन्मायालोभयोरभाववादिनं निराकृत्यास्तित्वं प्रतिपादनीयमिति ॥ २१ ॥

साम्प्रतमेषामेव क्रोधादीना समासेनास्तित्वं प्रतिपादयन्नाह—प्रीतिलक्षणं प्रेम—पुत्रकलत्रधनधान्यात्मीयेषु रागस्तद्विपरीतस्त्वात्मीयोपघातकारिणि द्वेष, तावेतौ द्वावपि न विद्येते, तथाहि—केषाञ्चिदभिप्रायो यदुत—मायालोभावेवावयवौ विद्येते, न तत्समुदायरूपो रागोऽवयव्यस्ति, तथा क्रोधमानावेव स्त, न तत्समुदायरूपोऽवयवी द्वेष इति, तथाहि—अवयवेभ्यो यद्यभिन्नोऽवयवी तर्हि तदभेदात्त एव नासौ अथ भिन्न पृथगुपलम्भ स्याद् घटपटवदित्येवमसद्विकल्पमूढतया नो संज्ञा निवेशयेत्, यतोऽवयवावयविनो कथञ्चिद्भेद इत्येवं भेदाभेदाख्यतृतीयपक्षसमाश्रयणात्प्रत्येकपक्षाश्रितदोषानुपपत्तिरिति, एवं चास्ति प्रीतिलक्षणं प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेष इत्येव संज्ञां निवेशयेत् ॥ २२ ॥

साम्प्रतं कषायसद्भावे सिद्धे सति तत्कार्यभूतोऽवश्यंभावी संसारसद्भाव इत्येतत्प्रतिषेधनिषेधद्वारेण प्रतिपादयितुमाह—

मूलम्—णत्थि चाउरते संसारे, णेवं मन्नं निवेसए ।
अत्थि चाउरंते संसारे, एवं सन्नं निवेसए ॥
णत्थि देवो व देवी वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि देवो व देवी वा एव सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र ॥ २।५।२३, २४ ॥

टीका—चत्वारोऽन्ता—गतिभेदा नरकतिर्यङ्नरामर-लक्षणा यस्य ससारस्यासौ चतुरन्त ससार एव कान्तारो भयैकहेतुत्वात्, स च चतुर्विधोऽपि न विद्यते, अपितु सर्वेषा ससृतिरूपत्वात्कर्मबन्धात्मकतया च दुःखैकहेतुत्वादेकविध एव, अथवा नारकदेवयोरनुपलभ्यमानत्वात्तिर्यङ्मनुष्ययोरेव सुखदुःखोत्कर्षतया तद्व्यवस्थानाद् द्विविध ससार पर्यायनयाश्रयणात्त्वनेकविधः अतश्चातुर्विध्य न कथचिद् घटत इत्येवं सज्ञा नो निवेशयेद्, अपितु अस्ति चतुरन्त ससार इत्येव सज्ञा निवेशयेत् ।
यत्तूक्तम्—एकविध ससार तन्नोपपद्यते यतोऽध्यक्षेण तिर्यङ्मनुष्ययोर्भेद समुपलभ्यते, न चासावेकविधत्वे ससारस्य घटते, तथा सभवानुमानेन नारकदेवानामप्यस्तित्वाभ्युपगमाद् द्वैविध्यमपि न विद्यते, सभवानुमान तु—सन्ति पुण्यपापयो प्रकृष्टफलभुज, तन्मध्यफलभुजा तिर्यङ्मनुष्याणा दर्शनाद्, अत सम्भाव्यन्ते प्रकृष्टफलभुजो, ज्योतिषा प्रत्यक्षेणैव दर्शनाद्, अथ तद्विमानानामुपलम्भ, एवमपि तदधिष्ठातृभि केश्चिद्भवितव्यमित्यनुमानेन

गम्यन्ते, ग्रहगृहीतवरप्रदानादिना च तदस्तित्वानुमिति, तदस्तित्वे तु प्रकृष्टपुण्यफलभुज इव प्रकृष्टपापफलभुग्भिरपि भाव्यमित्यतोऽस्ति चातुर्विध्यं संसारस्य पर्यायनयाश्रयणे तु यदनेकविधत्वमुच्यते तदयुक्तं, यत सप्तपृथिव्याश्रिता अपि नारका समानजातीयाश्रयणादेकप्रकारा एव, तथा तिर्यञ्चोऽपि पृथिव्यादय स्थावरास्तथा द्वित्रिचतुपञ्चेन्द्रियाश्च द्विषष्टियोनिलक्षप्रमाणा सर्वेऽप्येकविधा एव, तथा मनुष्या अपि कर्मभूमिजाकर्मभूमिजान्तरद्वीपकसमूर्च्छनजात्मकभेदमनादृत्यैकविधत्वेनैवाश्रिता तथा देवा अपि भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन भिन्ना एकविधत्वेनैव गृहीता, तदेवं सामान्यविशेषाश्रयणाच्चातुर्विध्य संसारस्य व्यवस्थितं नैकविधत्व, संसारवैचित्र्यदर्शनात्, नाप्यनेकविधत्वं सर्वेषां नारकादीनां स्वजात्यनतिक्रमादिति ॥ २३ ॥ २४ ॥

सर्वभावना सप्रतिपक्षत्वात्संसारसद्भावे सति अवश्य तद्विमुक्तिलक्षणया सिद्ध्यापि भवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां सिद्धि दर्शयितुमाह—

मूलम्—णत्थि सिद्धि असिद्धि वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि सिद्धि असिद्धि वा, एव सन्नं निवेसए ॥
णत्थि सिद्धि नियं ठाणं, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि सिद्धि नियं ठाणं, एवं सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।२५,२६ ॥

टीका—सिद्धि अशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्ता चासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेद्, अपि त्वसिद्धे—संसारलक्षणायाश्चातुर्विध्येनानन्तरमेव प्रसाधितायाः अविगानेनास्तित्व प्रसिद्धं, तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोऽस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येव संज्ञां निवेशयेदिति स्थितम्, इदमुक्तं भवति—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सद्भावात्कर्मक्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादत कस्यचिदात्यन्तिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरिति, तथा चोक्तम्—"दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषाऽस्त्यतिशायिनी। क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो, बहिरन्तर्मलक्षय ॥ १ ॥" इत्यादि, एवं सर्वज्ञसद्भावोऽपि संभवानुमानाद्द्रष्टव्यः, तथाहि—अभ्यस्यमानायाः प्रज्ञाया व्याकरणादि[ना]शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्ञातिशयो दृष्ट, तत्र कस्यचिदत्यन्तातिशयप्राप्ते सर्वज्ञत्वं स्यादिति संभवानुमान, न चैतदाशंकनीयम्, तद्यथा—ताप्यमानमुदकमत्यन्तोष्णतामियान्नाग्निसाद्भवेत्, तथा "दशहस्तान्तर व्योम्नि यो नामोत्प्लुत्य गच्छति। न योजनमसौ गन्तु शक्तोऽभ्यासशतैरपि ॥ १ ॥" इति, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरसाम्यात्, तथाहि—ताप्यमानं जलं प्रतिक्षणं क्षयं गच्छेन्न प्रज्ञा तु विवर्धते, यदि वा प्लोपे पञ्चत्वेऽव्याहतमग्नित्वं, तथा प्लवनविषयेऽपि पूर्वमर्यादाया अनतिक्रमाद्योजनोत्प्लवनाभाव, तत्परित्यागे चोत्तरोत्तर वृद्ध्या

प्रज्ञाप्रकर्षगमनवद्योजनशतमपि गच्छेदित्यतो दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरसाम्यादेतन्नाशंकनीयमिति स्थितम्, प्रज्ञावृद्धेश्च बाधकप्रमाणाभावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति। यदिवा अञ्जनभृतसमद्गकदृष्टान्तेन जीवकुलत्वाज्जगतो हिंसाया दुर्निवारत्वात्सिद्ध्याभाव, तथा चोक्तम्—

"जले जीवा स्थले जीवा, आकाशे जीवमालिनि।
जीवमालाकुले लोके, कथं भिक्षुरहिंसक ? ॥ १ ॥"

इत्यादि, तदेवं सर्वस्यैव हिंसकत्वात्सिद्ध्यभाव इति, तदेतदयुक्तं, तथाहि—सदोपयुक्तस्य पिहिताश्रवद्वारस्य पंचसमितिसमितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सर्वथा निरवद्यानुष्ठायिनो द्विचत्वारिंशद्दोषरहितभिक्षाभुज ईर्यासमितस्य कदंचिद्द्रव्यत प्राणिव्यपरोपणेऽपि तत्कृतबन्धाभाव, सर्वथा तस्यानवद्यत्वात, तथा चोक्तम्—"उच्चालियंमि पाए" इत्यादि प्रतीतं, तदेवं कर्मभावत्सिद्ध सद्भावोऽव्याहत, सामग्र्यभावादसिद्धिसद्भावोऽपीति ॥ २५ ॥
साम्प्रत सिद्धानां स्थाननिरूपणायाह—'णत्थि सिद्धी' इत्यादि सिद्धे —अशेपकर्मच्युतिलक्षणाया निजं स्थानं—ईषत्प्राग्भाराख्यं व्यवहारतो, निश्चयस्तु तदुपरि योजनक्रोशषड्भाग, तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावात्स नास्तीत्येवं सञ्ज्ञा नो निवेशयेत्, यतो बाधकप्रमाणाभावात् साधकस्य चागमस्य सद्भावात्तत्सत्ता दुर्निवारेति। अपि च—अपगताशेपकल्मषाणां सिद्धानां केनचिद्विशिष्टेन स्थानेन भाव्यम्, तच्चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रभूतं

द्रष्टव्य, न च शक्यते वक्तुमाकाशवत्सर्वव्यापिन सिद्धा इति, यतो लोकालोकव्याप्याकाश, न चालोकेऽपरद्रव्यस्य राभव, तस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति, विकल्पानुपपत्ते, तथाहि—सिद्धावस्थाया तेषा व्यापित्वमभ्युपगतमुत प्रागपि ?, न तावत्सिद्धावस्थाया, तद्व्यापित्वभवने निमित्ताभावात्, नापि प्रागवस्थाया, तद्भावे सर्वसंसारिणा प्रतिनियतसुखदुखानुभवो न स्यात्, न च शरीराद्बहिरवस्थितमवस्थानमस्ति, तत्सत्तानिबन्धनस्य प्रमाणस्याभावात्, अत सर्वव्यापित्व विचार्यमाणं न कथञ्चिद् घटते, तदभावे च लोकाग्रमेव सिद्धानां स्थानं, तद्गतिश्च 'कर्मविमुक्तस्योर्ध्वं गति' रितिकृत्वा भवति तथा चोक्तम्—

"लाउ एरंडफले अग्गी धूमे य उसु धणुविमुक्के ।
गइ पुव्वपओगेण एव सिद्धाणवि गईओ ॥ १ ॥"

इत्यादि । तदेवमस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निज स्थानमित्येव सज्ञा निवेशयेदिति ॥ २६ ॥

साम्प्रतं सिद्धे साधकानां साधूना तत्प्रतिपक्षभूतानामसाधूनां चास्तित्वं प्रतिपादयिषु पूर्वपक्षमाह—

मूलम्—णत्थि साहू असाहू वा, णेवं सन्नं निवेसए ।
अत्थि साहू असाहू वा, एवं सन्नं निवेसए ॥

णत्थि कल्लाण पावे वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि कल्लाण पावे वा, एव सन्नं निवेसए ॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।२७,२८ ॥

टीका—'नास्ति' न विद्यते ज्ञानदर्शनचारित्रक्रियोपेतो मोक्षमार्गंव्यवस्थित साधु, सम्पूर्णस्य रत्नत्रयानुष्ठानस्याभावात्, तदभावाच्च तत्प्रतिपक्षत्वादेतद्व्यवस्थानस्यैकतराभावे द्वितीयस्याप्यभाव इत्येव सज्ञां नो निवेशयेत, अपि तु अस्ति साधु, सिद्धे प्राक्साधितत्वात्, सिद्धिसत्ता च न साधुमन्तरेण, अत साधु सिद्धि तत्प्रतिपक्षभूतस्य चासाधोरिति। यश्च सम्पूर्णरत्नत्रयानुष्ठानाभाव प्रागाशंकित स सिद्धान्ताभिप्रायमबुद्ध्वैव, तथाहि—सम्यग्दृष्टेरुपयुक्तस्य सत्तायमवत श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णत क्वचिदज्ञानादनेषणीयग्रहणसम्भवेऽपि सततोपयुक्ततया सम्पूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति, यश्च भक्ष्यमिदमिद चाभक्ष्यं गम्यमिदमिदं चागम्यं प्रासुकमेषणीयमिदमिदं च विपरीतमित्येवं रागद्वेषसम्भवेन समभावरूपस्य सामयिकस्याभाव कैश्चिच्चोद्यते तत्तेषां चोदनमज्ञानविजृम्भणात्, तथाहि—न तेषां सामायिकवतां साधूनां रागद्वेषतया भक्ष्याभक्ष्यादिविवेक. अपितु प्रधानमोक्षाङ्गस्य सच्चारित्रस्य साधनार्थम्, अपि च—उपकारापकारयो समभावतया सामायिक न पुनर्भक्ष्याभक्ष्ययो समप्रवृत्त्येति ॥ २७ ॥ तदेवं मुक्ति-

मार्गप्रवृत्तस्य साधुत्वमितरस्य चासाधुत्व प्रदर्श्याधुना च सामान्येन कल्याणपापवतो सद्भावं प्रतिपेधनिपेधद्वारेणाह—'णत्थि कल्लाण पावे वा' इत्यादि, यथेष्टार्थफलसम्प्राप्ति कल्याणं तन्न विद्यते, सर्वाशुचितया निरात्मकत्वाच्च सर्वपदार्थानां बौद्धाभिप्रायेण, तथा तदभावे कल्याणवा व न कश्चिद्विद्यते, तथाऽऽत्माद्वैतवाद्यभिप्रायेण 'पुरुष एवेद सर्व' मिति कृत्वा पाप पापवान् वा न कश्चिद् विद्यते तदेवमभयोरप्यभाव, तथा चोक्तम्—

"विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिता समदर्शिन ॥ १ ॥"

इत्येवमेव कल्याणपापकाभावरूपां सज्ञा नो निवेशयेद्, अपि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवाश्च विद्यते, तद्विपर्यस्तं पापं तद्वाश्च विद्यते, इत्येव सज्ञां निवेशयेत्, तथाहि—नैकान्तेन कल्याणाभावो यो बौद्धैरभिहित, सर्वपदार्थानामशुचित्वासम्भवात्, सर्वाशुचित्वे च बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्ते, नापि निरात्मान स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया सर्वपदार्थाना विद्यमानत्वात् परद्रव्यादिभिस्तु न विद्यन्ते, सदसदात्मकत्वाद्वस्तुन तदुक्तम्—"स्वपरसत्ताव्युदासोपादानापाद्यं हि वस्तुनो वस्तुत्व" मिति तथाऽऽत्माद्वैतभावाभावात्पापाभावोऽपि नास्ति अद्वैतभावे हि सुखी दु खी सरोगो नीरोग सुरूप कुरूपो दुर्भग सुभगोऽर्थवान् दरिद्रस्तथाऽयमन्तिकोऽय तु दवीयान इत्येवमादिको जगद्वैचित्र्यभावोऽध्यक्षसिद्धो-

ऽपि न स्यात्। यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचाण्डालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो द्रष्टव्यं न पुन कर्मापादितवैचित्र्यभावोऽपि तेषां ब्राह्मणचाण्डालादीनां नास्तीति, तदेव कथचित्कल्याणमस्ति, तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति। न चैकान्तेन कल्याणं कल्याणमेव, यत केवलिनां प्रक्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसद्भावात्तथा नारकाणामपि पंचेन्द्रियत्वविशिष्टज्ञानादिसद्भावान्नैकान्तेन तेऽपि पापवन्त इति तस्मात्कश्चित्कल्याणं कश्चित्पापमिति स्थितम्॥ २८॥

तदेव कल्याणपापयोरनेकान्तरूपत्वं प्रसाध्यैकान्तं दूषयितुमाह—

मूलम्—कल्लाणे पावए वावि, ववहारो ण विज्जइ।
जं वेरं तं न जाणन्ति, समणा बाल पंडिया॥
असेसं अक्खयं वावि, सव्वदुक्खेति वा पुणो।
वज्झा पाणा न वज्झत्ति, इति वायं न नीसरे॥
दीसंति समियायारा, भिक्खुणो साहुजीविणो।
एए मिच्छोवजीवंति, इति दिट्ठिं न धारए॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।२९,३०,३१॥

टीका—कल्य—सुखमारोग्यं शोभनत्वं वा तदणतीति कल्याणं तदस्यास्तीति कल्याणो मत्वर्थीयाच्प्रत्ययान्तोऽर्शआदिभ्योऽजित्यनेन, कल्याणवानिति यावत्। एवं पापकशब्दोऽपि मत्वर्थीयाच्प्रत्ययान्तो द्रष्टव्य। तदेव सर्वथा कल्याणवानेवायं तथा पापवानेवायमित्येवंभूतो

व्यवहारो न विद्यते, तदेकान्तभूतस्यैवाभावात्, तदभावस्य च सर्ववस्तूनामनेकान्ताश्रयेण प्राक्प्रसाधितत्वादिति । एतच्च व्यवहाराभावाश्रयण सर्वत्र प्रागपि योजनीयम्, तद्यथा—सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्ति वा सर्वत्रवीर्यमित्येवंभूत एकान्तिको व्यवहारो न विद्यते, तथा नास्ति लोकोऽलोको वा तथा न सन्ति जीवा अजीवा इति चेत्येवभूतो व्यवहारो न विद्यत इति सर्वत्र सम्बन्धनीयम्। तथा वैर—वज्रं तद्वत्कर्म वैर विरोधो वा वैर तद्येन परोपघातादिनैकान्तपक्षसमाश्रयणेन वा भवति तत्तो 'श्रमणा' तीर्थिका वाला इव रागद्वेपकलिता 'पण्डिता' पण्डिताभिमानिन शुष्कतर्कदर्पाध्माता न जानन्ति, परमार्थभूतस्याहिंसालक्षणस्य धर्मस्यानेकान्तपक्षस्य वाऽनाश्रयणादिति । यदिवा यद्वैर तत्ते श्रमणा वाला पण्डिता वा न जानन्तीत्येव वाच न निसृजेदित्युत्तरेण सम्बन्ध, किमिति न निसृजेत्? यतस्तेऽपि किञ्चिज्जानन्त्येव। अपि च तेपा तन्निमित्तकोपोत्पत्तेः, यच्चैवभूतं वचस्तन्न वाच्य, यत उक्तम्—"अप्पत्तिय जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो। सव्वसो त ण भासेज्जा, भास अहियगामिणि॥ ? ॥" इत्यादि ॥ २६ ॥

अपरमपि वाक्सयममधिकृत्याह— 'असेस' मित्यादि, अशेप कृत्स्नं तत्सामान्याभिप्रायेण अक्षत नित्यमित्येवं न ब्रूयात्, प्रत्यक्षं प्रतिसमय चान्यथाऽन्यथाभावदर्शनात् न सर्वथानित्यमेवंभूतस्य स्वस्वभावाक्षय प्रत्यभिज्ञानस्य भूतत्वादुत्पन्नेषु केशनखादि-

ष्वपि प्रदर्शनात, तथा अपिशब्दादेकान्तेन क्षणिकमित्येवमपि वाचं न निसृजेत्, सर्वथा क्षणिकत्वे पूर्वस्य सर्वथा विनष्टत्वादुत्तरस्य निर्हेतुक उत्पादः स्यात्, तथा च सति 'नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणा' दिति। तथा सर्वं जगद्दुःखात्मकमित्येवमपि न ब्रूयात सुखात्मकस्यापि सम्यग्दर्शनादिभावेन दर्शनात् तथा चोक्तम्—'तणसंथारनिसण्णोऽवि मुणिवरो भट्ठरागमयमोहो। जं पावइ मुत्तिसुहं कत्तो तं चक्कवट्टीवि? ॥ १॥" इत्यादि तथा वध्याश्चौरपारदारिकादयोऽवध्या वा तत्कर्मानुमतिप्रसङ्गादित्येवंभूतां वाचं स्वानुष्ठानपरायणः साधुः परव्यापारनिरपेक्षो न निसृजेत्, तथाहि सिंहव्याघ्रमार्जारादीन्परसत्त्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा माध्यस्थ्यमवलम्बयेत, तथा चोक्तम्—"मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेष्विति," (तत्वा० अ०७, सू०६) एवमन्योऽपि वाक्संयमो द्रष्टव्य तद्यथा—अमी गवादयो वाह्या न वाह्या वा तथाऽमी वृक्षादयश्छेद्या न छेद्या वेत्यादिक वचो न वाच्यं साधुनेति ॥ ३०॥ अयमपरो वाक्संयमप्रकारोऽन्तःकरणशुद्धिसमाश्रित प्रदर्श्यते—'दीसन्ती' त्यादि, 'दृश्यन्ते" समुपलभ्यन्ते स्वशास्त्रोक्तेन विधिना निभृत—संयत आत्मा येषां ते निभृतात्मान क्वचित्पाठ 'समियाचार' त्ति सम्यक्—स्वशास्त्रविहितानुष्ठानादविपरीत आचारः—अनुष्ठानं येषां ते सम्यगाचारा, सम्यग्वा—इतो व्यवस्थित आचारो येषां ते समिताचारा, के ते?—भिक्षणशीला भिक्षवो भिक्षामात्रवृत्तय, तथा साधुना विधिना जीवितुं शीलं येषां ते साधुजीविनः, तथा हि—ते न कस्यचिदुपरोधविधानेन जीवन्ति तथा क्षान्ता दान्ता

जितक्रोधा सत्यसंधा दृढव्रता युगान्तरमात्रदृष्टयः। परिमितोदकपायिनो मौनिन सदा तायिनो विविक्तैकान्तध्यानाध्यासिन अकौत्कुच्यास्तानेवंभूतानवधार्यापि 'सरागा अपि वीतरागा इव चेष्टन्ते' इति मत्वैते मिथ्यात्वोपजीविन इत्येवं दृष्टिं न धारयेत्—नैवभूतमध्यवसायं कुर्यान्नाप्येवभूतां वाचं निसृजेत्, यथैते मिथ्योपचारप्रवृत्ता मायाविन इति, छद्मस्थेन ह्यर्वाग्दर्शिनैवंभूतस्य निश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादित्यभिप्राय, ते च स्वयूथ्या वा भवेयुस्तीर्थान्तरीया वा तावुभावपि न वक्तव्यो साधुना यत उक्तम्—"यावत्परगुणपरदोषकीर्तने व्यापृतं मनो भवति। तावद्वरं विशुद्धे ध्याने व्यग्रं मन कर्तुम्॥१॥" इत्यादि॥३१॥

किञ्चान्यत्—

सूत्रम्-दक्खिणाए पडिलंभो अत्थि वा णत्थि वा पुणो।
न वियागरेज्ज मेहावी संतिमग्गं च वूहए॥
इच्चेएहिं ठाणेहिं, जिणदिट्ठेहिं संजए।
धारयन्ते उ अप्पाणं, आमोक्खाए परिव्वएज्जासि॥
त्ति बेमि॥

—श्री सूयगडाङ्ग सूत्र २।५।३२,३३॥

टीका—दानं दक्षिणा तस्या प्रतिलम्भः—प्राप्ति स दानलाभोऽस्मादमुष्माद् वा सकाशादस्ति नास्ति वेत्येवं न व्यागृणीयान्मेधावी—मर्यादाव्यवस्थित। यदि वा स्वयूथ्यस्य तीर्थान्तरीयस्य वा दानं ग्रहणं वा प्रति यो लाभः स एकान्तेनास्ति भवति

नास्ति वेत्येवं न ब्रूयादेकान्तेन, तद्दानग्रहणनिषेधे दोषोत्पत्ति-सम्भवात्, तथाहि तद्दाननिषेधेऽन्तरायसंभवस्तद्वैचित्र्यं च, तद्दानानुमतावधर्माधिकरणोद्भव इत्यतोऽस्ति दानं नास्ति वेत्येवमेका-न्तेन न ब्रूयात्। कथं तर्हि ब्रूयादिति दर्शयति—शान्ति—मोक्षस्तस्य मार्गः—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्तमुपबृंहयेद् वर्धयेत्, यथा मोक्षमार्गाभिवृद्धिर्भवति तथा ब्रूयादित्यर्थः, एतदुक्तं भवति पृष्टः केनचिद्विधिप्रतिषेधमन्तरेण देयप्रतिग्राहक-विषयं निरवद्यमेव ब्रूयादित्येवमादिकमन्यदपि विविधधर्मदेशनाव-सरे वाच्यं तथा चोक्तम्—सावज्जणवज्जाणं वयणाणं जो न जाणइ विसेसं" इत्यादि साम्प्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह—'इच्चेएहिं', मित्यादि, इत्येतैरेकान्तनिषेधद्वारेणानेकान्तविधायिभि-स्थानैर्वाक्संयमप्रधानैः समस्ताध्ययनोक्तैः रागद्वेषरहितैर्जिनैर्दृष्टैः—उपलब्धैर्न स्वमतिविकल्पोत्थापितैः संयतः—सत्संयमवानात्मा-नं धारयन्—एभिः स्थानैरात्मानं वर्तयन्नामोक्षाय—अशेषकर्म-क्षयाख्यं मोक्षं यावत्परि—समन्तात्संयमानुष्ठाने व्रजेः गच्छे-स्त्वमिति विधेयस्योपदेशः। इति परिसमाप्त्यर्थे, ब्रवीमीति पूर्ववत्। नयाः अभिहिता अभिधास्यमानलक्षणाश्चेति ॥ ३३ ॥

श्री ठाणांग सूत्र

मूलम्-जदत्थि णं लोगे त सव्वं दुपओआरं तंजहा—
जीवच्चेव अजीवच्चेव । तसे चेव थावरे चेव १,
सजोणियच्चेव अजोणियच्चेव २, साउयच्चेव
अणाउयच्चेव ३, सइंदियच्चेव, अणिंदिएच्चेव ४,
सवेयगा चेव, अवेयगा चेव ५, सरूवि चेव
अरुवि चेव ६, सपोग्गला चेव अपोग्गला चेव ७,
संसारसमावन्नगा चेव असंसारसमावन्नगा चेव ८,
सासया चेव असासया चेव ९ ॥

—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान २ उद्देश १ सूत्र ५७ ॥

टीका—अस्य च पूर्वसूत्रेण सहाय सम्बन्ध—पूर्व मुक्तम् 'एक गुणरूक्षा पुद्गला अनन्ता' तत्र किमनेकगुणरूक्षा अपि पुद्गला भवन्ति येन ते एकगुणा रूक्षतया विशिष्यन्त इति ? उच्यते, भवन्त्येव, यतो 'जदत्थी' त्यादि, परम्परसूत्रसम्बन्धस्तु— 'श्रुतं मयाऽऽयुष्मता भगवतैवमाख्यातमेक आत्मे' त्यादि तदे-दमपरमाख्यात 'जदत्थी' त्यादि, संहितादिचर्चः पूर्ववत्, 'यद्' जीवादिकं वस्तु 'अस्ति' विद्यते, णमिति वाक्यालङ्कारे, क्व-चित्पाठो जदत्थि चणं ति, तत्रानुस्वार आगमिकश्चशब्द पुनरर्थ

एवं चास्य प्रयोग —अस्त्यात्मादिवस्तु, पूर्वाऽध्ययनप्ररूपितत्वात्, यच्चास्ति 'लोके' पञ्चास्तिकायात्मके लोक्यते—प्रमीयत इति लोक इति व्युत्पत्त्या लोकालोकरूपे वा तत् 'सर्वं' निरवशेषं द्वयो पदयो —स्थानयो प्रत्ययोर्विभक्तिमवस्तुनाद्विपर्ययज्ञनयोरवतारो यस्य तत् द्विपदावतारमिति, 'दुपडोयारं' ति क्वचित् पठ्यते, तत्र द्वयो प्रत्यवतारो यस्य तत् द्विप्रत्यवंतारमिति, स्वरूपवत् प्रतिपक्षवच्चेत्यर्थ, 'तद्यथे' त्युदाहरणोपन्यासे, जीवच्चेव अजीवच्चेत्ति, जीवाश्चैवाजीवाश्चैव, प्राकृतत्वात् संयुक्तपरत्वेन ह्रस्व, चकारौ समुच्चयार्थौ, एवकारावनवधारणे, तेन च राश्यन्तरापोहमाह, नो जीवाख्यं राश्यन्तरमस्तीति चेत्, नैवम्, सर्वनिषेधकत्वे नोशब्दस्य नोजीवशब्देनाजीव एव प्रतीयते, देशनिषेधकत्वे तु जीवदेश एव प्रतीयते; न च देशो देशिनोऽत्यन्तव्यतिरिक्त इति जीव एवासाविति, 'च्चेय' इति वा एवकारार्थ 'चिय च्चेय एवार्थ' इति वचनात्, ततश्च जीवा एवेति विवक्षितवस्तु अजीवा एवेति च तत्प्रतिपक्ष इति, एवं सर्वत्र, अथवा 'यदस्ति' अस्तीति यत् सन्मात्रं यदित्यर्थ तद् द्विपदावतारं—द्विविधं, जीवाजीवभेदादिति, शेषं तथैव। अथ त्रसेत्यादिकया नवसूत्र्या जीवतत्त्वस्यैव भेदान् सप्रतिपक्षानुपदर्शयति—'तसे चेवे' त्यादि, तत्र त्रसनामकर्मोदयस्त्रस्यन्तीति त्रसा—द्वीन्द्रियादय स्थावरनामकर्मोदयात् तिष्ठंतीत्येवशीला स्थावरा —पृथिव्यादय, सह योन्या-उत्पत्तिस्थानेन सयोनिका —संसारिणस्तद्विपर्यासभूता अयोनिका—सिद्धा, सहायुषा वर्तन्ते इति सायुषस्तदन्येऽनायुष —सिद्धा, एवं सेन्द्रिया —संसारिण, अनिन्द्रिया —सिद्धादय,

सवेदका—स्त्रीवेदाद्युदयवन्त, अवेदका सिद्धादय सहरूपेण—मूर्त्या वर्तन्त इति समासान्ते इन्प्रत्यये सति सरूपिण संस्थानवर्णादिमन्त सशरीरा इत्यर्थ न रूपिणो अरूपिणो—मुक्ता सपुद्गला कर्मादिपुद्गलवन्तो जीवा अपुद्गला—सिद्धा समार भवं समापन्नका—आश्रिता ससारसमापन्नका—ससारिण, तदितरे सिद्धा शाश्वता—सिद्धा जन्ममरणादिरहितत्वात्, अशाश्वता—ससारिणस्तद्युक्तत्वादिति ॥

एव जीवतत्त्वस्य द्विपदावतार निरूप्याजीवतत्त्वस्य तं निरूपयन्नाह—

सूत्रम्- आगासा चेव, नो अगासा चेव ।
धम्मे चेव अधम्मे चेव ॥ (सूत्र ५८)
बंधे चेव, मोक्खे चेव १ पुन्ने चेव पापे चेव ॥२॥
आसवे चेव संवरे चेव ॥३॥
वेयणा चेव निज्जरा चेव ॥ ४ ॥ (सूत्र ५९)
—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान २ उद्देश १ ॥

टीका—आकाश व्योम नोआकाश—तदन्यद्धर्मास्तिकायादि, धर्म - धर्मास्तिकायो गत्युपष्टम्भगुण तदन्योऽधर्म—अधर्मास्तिकाय स्थित्युपष्टम्भगुण । सविपक्ष बन्धादितत्त्वसूत्राणि चत्वारि प्राग्वदिति ।

मूलम्—सत्त मूलनया प० त०—नेगमे संगहे ववहारे उज्जुसुते सद्दे समभिरूढे एवंभूते ॥
—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान ७, उद्देश ३ सूत्र ५५२ ॥

एवं चास्य प्रयोग —अस्त्यात्मादिवस्तु, पूर्वाध्ययनप्ररूपितत्वात्, यच्चास्ति 'लोके' पञ्चास्तिकायात्मके लोक्यते—प्रमीयत इति लोक इति व्युत्पत्त्या लोकालोकरूपे वा तत् 'सर्वं' निरवशेषं द्वयो पदयो —स्थानयो पत्रयोर्विभाषितं मस्तुनाद्विपर्ययज्ञत्त्रयोरवतारो यस्य तत् द्विपदावतारमिति, 'दुपडोयारं' ति क्वचित् पठ्यते, तत्र द्वयो प्रत्यवतारो यस्य तत् द्विप्रत्यवतारमिति, स्वरूपवत् प्रतिपक्षवच्चेत्यर्थ, 'तद्यथे' त्युदाहरणोपन्यासे, जीवच्चेव अजीवच्चेत्ति, जीवाश्चैवाजीवाश्चैव, प्राकृतत्वात् सयुक्तपरत्वेन ह्रस्व, चकारौ समुच्चयार्थौ, एवकारावप्रधारणे तेन च राश्यन्तरापोहमाह, नो जीवाख्य राश्यन्तरमस्तीति चेत्, नैवम्, सर्वनिषेधकत्वे नोशब्दस्य नोजीवशब्देनाजीव एव प्रतीयते, देशनिषेधकत्वे तु जीवदेश एव प्रतीयते; न च देशो देशिनोऽत्यन्तव्यतिरिक्त इति जीव एवासाविति, 'च्चेय' इति वा एवकारार्थ 'चिय च्चेय एवार्थ' इति वचनात्, ततश्च जीवा एवेति विवक्षितवस्तु अजीवा एवेति च तत्प्रतिपक्ष इति, एवं सर्वत्र, अथवा 'यदस्ति' अस्तीति यत् सन्मात्रं यदित्यर्थ तद् द्विपदावतारं—द्विविधं, जीवाजीवभेदादिति, शेषं तथैव। अथ त्रसेत्यादिकया नवसूत्र्या जीवतत्त्वस्यैव भेदान् सप्रतिपक्षानुपदर्शयति—'तसे चेवे' त्यादि, तत्र त्रसनामकर्मोदयस्त्रस्यन्तीति त्रसा—द्वीन्द्रियादय स्थावरनामकर्मोदयात् तिष्ठतीत्येवशीला स्थावरा—पृथिव्यादय, सह योन्या-उत्पत्तिस्थानेन सयोनिका—ससारिणस्तद्विपर्यासभूता अयोनिका—सिद्धा, सहायुषा वर्तन्ते इति सायुषस्तदन्येऽनायुष—सिद्धा, एव सेन्द्रिया—ससारिण, अनिन्द्रिया—सिद्धादय,

सवेदका —स्त्रीवेदाद्युदयवन्त, अवेदका सिद्धादय, सहरूपेण—मूर्त्या वर्तन्त इति समासान्ते इन्प्रत्यये सति सरूपिण सस्थान-वर्णादिमन्त सशरीरा इत्यर्थ न रूपिणो अरूपिणो—मुक्ता सपुद्गला कर्मादिपुद्गलवन्तो जीवा अपुद्गला —सिद्धा संसारं भवं समापन्नका —आश्रिता संसारसमापन्नका —संसारिण, तदितरे सिद्धा शाश्वता —सिद्धा जन्ममरणादिरहितत्वात्, अशाश्वता—संसारिणस्तद्युक्तत्वादिति ॥

एवं जीवतत्त्वस्य द्विपदावतार निरूप्याजीवतत्त्वस्य तं निरूपयन्नाह—

सूत्रम्- आगासा चेव, नो अगासा चेव।
धम्मे चेव अधम्मे चेव ॥ (सूत्र ५८)
बधे चेव, मोक्खे चेव १ पुन्ने चेव पापे चेव ॥२॥
आसवे चेव संवरे चेव ॥ ३ ॥
वेयणा चेव निज्जरा चेव ॥ ४ ॥ (सूत्र ५६)

—श्री स्थानाङ्ग सूत्र स्थान २ उद्देश १ ॥

टीका—आकाश व्योम नोआकाश—तदन्यद्धर्मास्तिकायादि, धर्म - धर्मास्तिकायो गत्युपष्टम्भगुण तदन्योऽधर्म—अधर्मास्तिकाय स्थित्युपष्टम्भगुण। सविपक्षबन्धादितत्त्वसूत्राणि चत्वारि प्राग्वदिति।

मूलम्—सत्त मूलनया प० त०—नेगमे संगहे ववहारे उज्जुसुते सद्दे समभिरूढे एवंभूते ॥

—श्री स्थानाग सूत्र स्थान ७, उद्देश ३, सूत्र ५५२ ॥

टीका—'सत्त मूले'त्यादि, मूलभूता नया मूलनया, ते च सप्त, उत्तरनया हि सप्तशतानि, यदाह—"एक्केक्को य सयवेहो सत्तनयसया हवति एवं तु। अन्नोऽवि य आएसो पंचेव सया नयाण तु ॥१॥" [एकैक शतविध. एवं सप्तनयशतानि भवन्ति अन्योऽपि चादेशो नयानां पचैव शतानि ॥१॥] तथा—'जावइया वयणपहा तावइया चेव हुति नयवाया। जावइया नयवाया तावइया चेव परसमय ॥२॥" त्ति, [यावन्तो वचनपन्थान तावन्तश्चैव भवन्ति नयवादा. यावन्तो नयवादास्तावन्तश्चैव परसमया इति ॥ १ ॥] तत्रानन्तधर्माध्यासिते वस्तुन्येकधर्मसमर्थनप्रवणो बोधविशेषो नय इति, तत्र 'णेगमे' त्ति नैकैर्मानैर्महासत्तासामान्य-विशेषविशेषज्ञानैर्मिमीते मिनोति वा नैकम., आह च—"णेगाइं माणाइं सामन्नोभयविसेसनाणाइं। जं तेहिं मिणइ तो णेगमो णयो णेगमाणोत्ति ॥ १ ॥" [नैकानि मानानि सामान्योभय-विशेषज्ञानानि यत्तैर्मिनोति ततो नैगमो नयो नैकमान इति ॥१॥] इति निगमेषु वा—अर्थबोधेषु कुशलो भवो वा नैगम, अथवा नैके गमा.—पन्थानो यस्य स नैकगमः, आह च—'लोगत्थ-निबोहा वा निगमा तेसु कुसलो भवो वाऽयं। अहवा ज णेगगमो णेगपहा णेगमो तेणं ॥ १ ॥" इति ॥ [लोकार्थनिबोधा वा निग-मास्तेषु कुशलो भवो वाऽयं। अथवा यत् नैकगमोऽनेकपथो नैगमस्तेन ॥ १ ॥] तत्रायं सर्वत्र सदित्येवमनुगताकारावबोधहेतु-भूता महासत्तामिच्छति अनुवृत्तव्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च सामान्य-

विशेषं द्रव्यत्वादि व्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च नित्यद्रव्यवृत्तिमन्त्यं विशेषमिति, आह—इत्थं तर्ह्यं न नैगम सम्यग्दृष्टिरेवास्तु सा-मान्यविशेषाभ्युपगमपरत्वात् साधुवदिति, नैतदेवं, सामान्य-विशेषवस्तूनामत्यन्तभेदाभ्युपगमपरत्वात्तस्येति, आह च भाष्य-कार —"ज सामन्नविसेसे परोप्पर वत्थुओ य सो भिन्ने। मन्नइ अच्चंतमओ मिच्छादिट्ठी कणादोव्व ॥ १ ॥ दोहिवि नएहिं नीयं सत्थमुलूएण तहवि मिच्छत्त। जं सविसयपहाणत्तणेण अन्नोन्ननिरवेक्खा ॥ २ ॥" इति [यत्परस्पर वस्तुनश्च सामान्य-विशेषौ भिन्नो अत्यन्त मनुतेऽतो मिथ्यादृष्टि कणाद इव ॥ १ ॥ उलूकेन शास्त्रं द्वाभ्यां नयाभ्यां नीतमपि मिथ्यात्व यत्स्वविषय-प्रधानत्वेनान्योऽन्यनिरपेक्षौ (अङ्गीकृतौ) ॥२॥] इति १, तथा संग्रहण भेदाना संगृह्णाति वा भेदान् सगृह्यन्ते वा भेदा येन स सग्रह, उक्तञ्च — 'सगहण संगिण्हइ सगिज्झने व तेण ज भेया। तो सगहोत्ति"[सग्रहण सगृह्णाति संगृह्यंते वा तेन यस्माद्भेदास्तत सग्रह ॥] एतदुक्त भवति—सामान्य-प्रतिपादनपर. खल्वयं सदित्युक्ते सामान्यमेव प्रतिपद्यते न विशेष, तथा च मन्यते—विशेषा. सामान्यतोऽर्थान्तरभूता. स्युरनर्थान्तरभूता वा ?, यद्यर्थान्तरभूता न सन्ति ते, सामान्यादर्था-न्तरत्वात् खपुष्पवत्, अथानर्थान्तरभूता सामान्यमात्र ते, तदव्यतिरिक्तत्वात्, तत्स्वरूपवदिति, आह च—"सदिति भणियमि जम्हा सव्वत्थाणुप्पवत्तए बुद्धी। तो सव्वं तम्मत्त नत्थि तदत्थंतरं किंचि ॥ १ ॥ कुम्भो भावाऽणन्नो जइ तो भावो अहऽन्नहाऽभावो। एवं पडादओऽविहु भावाऽनन्नत्ति तम्मत्त ॥ २ ॥" इति, [सदिति भणिते यस्मात्सर्वत्रानुप्रवर्तते बुद्धि. तत सर्वं तन्मात्र नास्ति

तदर्थान्तरं किंचित् ॥ १ ॥ कुम्भो भावादनन्यो यदि ततो भावो-ऽथान्यथाऽभाव· एवं पटादयोऽपि भावादनन्या इति तन्मात्रं (सर्वं)। २॥] इति २. तथा व्यवहरणं व्यवहरतीति वा व्यवह्रियते वा—अपलप्यते सामान्यमनेन विशेषान् वाऽऽश्रित्य व्यवहारपरो व्यवहार आह च—'ववहरण ववहरए स तेण ववहीरए व सामन्नं। ववहारपरो य जओ विसेसओ तेण ववहारो ॥ १ ॥" इति, [व्यवहरण व्यवहरति व्यपहरति वा सामान्यं व्यवहारपरो यतश्च विशेषतस्तेन व्यवहार ॥ १ ॥] अय हि विशेषप्रतिपादन-पर सदित्युक्ते विशेषानेव घटादीन् प्रतिपद्यते, तेषामेव व्यवहार-हेतुत्वात्, न तदतिरिक्त सामान्य, तस्य व्यवहारापेतत्वात्, तथा च—सामान्य विशेषेभ्यो भिन्नमभिन्न वा स्यात्?, यदि भिन्न विशेषव्यतिरेकेणोपलभ्येत, न चोपलभ्यते, अथाभिन्न विशेषमात्रं ततव्यतिरिक्त वात्तत्स्वरूपवदिति आह च—'उवलंभव्ववहारा-भावाओ त(नि)व्विसेसभावाओ। तं नत्थि खपुप्फमिव सन्ति विसेसा सयच्चक्खं ॥ १ ॥" इति, [उपलम्भव्यवहाराभावात्तद्वि-(न्निर्वि)शेषभावात् तन्नास्ति खपुष्पमिव विशेषा· सन्ति स्वप्रत्यक्षं ॥ १ ॥] तथा लोकसंव्यवहारपरो व्यवहार, तथाहि—असौ पञ्चवर्णोऽपि। भ्रमरादिवस्तुनि बहुतरत्वात् कृष्णत्वमेव मन्यते, आह च—"बहुतरओत्तिय तं चिय गमेइ सतेवि सेसए मुयइ। संववहारपरतया ववहारो लोगमिच्छन्तो ॥१॥" [संव्यवहार-परतया लोकमिच्छन् व्यवहारो बहुतरत्वादेव तं गमयति सतोऽपि

शेषकान्मुञ्चत्येव ॥ १ ॥] इति ३, तथा ऋजु—वक्रविपर्ययादभि-मुखं श्रुत-ज्ञान यस्यासौ ऋजुश्रुत, ऋजु वा—वर्त्तमानमतीतानागत-वक्रपरित्यागाद्वस्तु सूत्रयति-गमयतीति ऋजुसूत्र, उक्तं च-"उज्जुं रिउ सुय नाणमुज्जुसुयमस्स सोऽयमुज्जुसुओ। सुत्तायइ वा जमुज्जुं वत्थुं तेणुज्जुपुत्तोत्ति ॥ १ ॥" [ऋजु—अवक्र श्रुतं—ज्ञान ऋजुश्रुतमस्य सोऽयमृजुश्रुत सूत्रयति वा यदृजु वस्तु तेन ऋजुसूत्र इति ॥ १ ॥] अय हि वर्त्तमान निजक लिंगवचन-नामादिभिन्नमप्येक वस्तु प्रतिपद्यते, शेषमवस्त्विति, तथाहि—अतीतमेष्यद्वा न भावो, विनष्टानुत्पन्नत्वाददृश्यत्वात्खपुष्पवत्, तथा परकीयमप्यवस्तु निष्फलत्वात् खकुसुमवत्, तस्माद्वर्त्तमानं स्व वस्तु, तच्च न लिङ्गादिभिन्नमपि स्वरूपमुज्झति, लिङ्गभिन्न तटस्तटी तटमिति वचनभिन्नमापो जलं नामादिभिन्न नामस्थापना-द्रव्यभावभिन्न, आह च—"तम्हा निजग संपयकालीयं लिंगवयण-भिन्नपि। नामादिभेयविहिय पडिवज्जइ वत्थुमुज्जुसुय ॥ १ ॥" त्ति [तस्मान्निजक साम्प्रतकालीन लिंगवचनभिन्नमपि नामा-दिभेदवदपि प्रतिपद्यते ऋजुसूत्रो वस्तु ॥ १ ॥] इति ४, तथा शपन शपति वा असौ शप्यते वा तेन वस्त्विति शब्दस्तस्यार्थपरिग्रहा-दभेदोपचारान्नयोऽपि शब्द एव, यथा कृतकत्वादिलक्षणहेत्वर्थ-प्रतिपादकं पद हेतुरेवोच्यत इति, आह च—"सवणं सवइ स तेण व सप्पए वत्थु जं तओ सद्दो। तस्स-ऽत्थपरिगहओ नओऽवि सद्दोत्ति हेउव्व ॥ १ ॥" इति, [शपनं

शप्यते स तेन वा शप्यते वस्तु यत्तत शब्दः । तस्यार्थपरिग्रहात् नयोऽपि शब्द इति हेतुरिव हेत्वर्थप्रतिपादक ॥ १ ॥] अयं च नामस्थापनाद्रव्यकुम्भा न सन्त्येवेति मन्यते, तत्कार्याकरणात् खपुष्पवत्, न च भिन्नलिंगवचनमेकं, लिंग-वचनभेदादेव, स्त्रीपुरुषवत् कटा वृक्ष इत्यादिवत्, अतो घट कुट कुम्भ इति स्वपर्यायध्वनिवाच्यमेकमेवेति, आह च—"तं चिय रिउसुत्तमयं पच्चुपन्नं विसेसियतरं सो। इच्छइ भावघडं चिय जं न उ नामादओ तिन्नि ॥ १ ॥" [तदेव ऋजुसूत्रमतं प्रत्युत्पन्नं विशेषिततर स इच्छति भावघटमेव (मनुते) नैव नामादींस्त्रीन् यत ॥१॥] इति ५, तथा नानार्थेषु-नानासंज्ञासम-भिरोहणात् समभिरूढ, उक्तं च—"जं जं सन्नं भासइ तं तं चिय समभिरोहए जम्हा। सन्नतरत्थविमुहो तओ क(न)ओ समभिरूढोत्ति ॥ १ ॥" [यां या संज्ञा भाषते तां तां समभिरोह-त्येव यस्मात् सज्ञान्तरार्थविमुखस्ततो नय समभिरूढ इति ॥ १ ॥] अय हि मन्यते—घटकुटादय शब्दा भिन्नप्रवृत्ति-निमित्तत्वाद्भिन्नार्थगोचरा, घटपटादिशब्दवत्, तथा, च घटनात् घटो विशिष्टचेष्टावानर्थो घट इति, तथा 'कुट कौटिल्ये कुटनात् कुट, कौटिल्ययोग्यात् कुट इति, घटोऽन्य कुटोऽप्यन्य एवेति ६, तथा यथा शब्दार्थ एवं पदार्थो भूत सन्नित्यर्थोऽन्यथा-भूतोऽसन्निति प्रतिपत्तिपर एवंभूतो नय, आह च—' एव जहसद्दत्थो सतो भूओ। तयऽन्नहाऽभूओ। तेणेवंभूयनओ सद्दत्थपरो

विसेसेण ॥ १ ॥" इति, [एव यथाशब्दार्थ स्तथा भूत सन्नन्यथा-ऽभूत तत (असन्) तेनैवभूतनय विशेषेण शब्दार्थपर ॥१॥] अय हि योषिन्मस्तकव्यवस्थित चेष्टावन्तमेवार्थ घटशब्दवाच्य मन्यते, न स्थानभरणादिक्रियान्तरापन्नमिति, भवन्ति चात्र श्लोका—"शुद्ध द्रव्य समाश्रित्य, संग्रहस्तद-शुद्धित । नैगमव्यवहारौ स्त, शेषा पर्यायमाश्रिता ॥ १ ॥ अन्यदेव हि सामान्यमभिन्नज्ञानकारणम् । विशेषोऽप्यन्यमेवेति, मन्यते नैगमो नय ॥ २ ॥ सद्रूपतानतिक्रान्तस्वस्वभावमिद जगत् । सत्तारूपतया सर्वं सगृह्णन् सग्रहो मत ॥ ३ ॥ व्यवहार-स्तु तामेव, प्रतिवस्तु व्यवस्थिताम् । तथैव दृश्यमानत्वात्, व्यवहार-यति देहिन. ॥ ४ ॥ तत्रर्जुसूत्रनीति स्यात्, शुद्धपर्यायसंस्थिता । नश्वरस्यैव भावस्य, भावात् स्थितिवियोगत ॥ ५ ॥ अतीताना-गताकारकालसस्पर्शवर्जितम् । वर्त्तमानतया सर्वमृजुसूत्रेण सूत्र्यते ॥ ६ ॥ विरोधिलिङ्गसख्यादिभेदाद्भि न्नस्वभावताम् । तस्यैव मन्य-मानोऽयं, शब्द प्रत्यवतिष्ठते ॥ ७ ॥ तथाविधस्य तस्यापि, वस्तुन. क्षणवृत्तिन ब्रूते समभिरूढस्तु, सज्ञाभेदेन भिन्नताम् ॥ ८ ॥ एकस्यापि ध्वनेर्वाच्य, सदा तन्नोपपद्यते । क्रियाभेदेन भिन्नत्वादेव-भूतोऽभिमन्यते ॥ ९ ॥"

श्री भगवती सूत्र

मूलम्–रायगिहे नगरे समोसरणं, परिसा निग्गया जाव एवं वयासी––जीवे णं भन्ते ! सयंकडं दुक्खं वेदेइ ?, गोयम ! अत्थेगइय वेएइ अत्थेगइयं नो वेएइ, से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ––अत्थेगइयं वेदेइ अत्थेगइयं नो वेएइ ?, गोयमा ! उदिन्नं वेएइ अनुदिन्न नो वेएइ, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ–अत्थेगइय वेएइ अत्थेगतियं नो वेएइ, एवं चउव्वीसदंडएणं जाव वेमाणिए ॥ जीवा णं भंते ! सयकडं दुक्खं वेएन्ति ?, गोयमा ! अत्थेगइयं वेयंति अत्थेगइयं णो वेयंति, से केणट्ठेणं?, गोयमा ! उदिन्नं वेयन्ति नो अणुदिन्नं वेयन्ति, से तेणट्ठेणं, एवं जाव वेमाणिया ॥ जीवे णं भंते ! सयंकडं आउयं वेएइ ? गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ अत्थेगइयं नो वेएइ जहा दुक्खेणं दो दंडगा तहा आउएणवि दो दंडगा एगत्तपुहुत्तिया, एगत्तेणं जाव वेमाणि-या पुहुत्तेणवि तहेव ॥

—श्री भगवती सूत्र शतक १, उद्देश २, सूत्र २० ॥

टीका---'रायगिहे' इत्यादि पूर्ववत्, 'जीवे ण' मित्यादि-तत्र 'सयकडं दुक्ख'ति यत्परकृतं तन्न वेदयतीति प्रतीतमेवात स्वयकृतमिति पृच्छति स्म 'दुक्खं'ति सासारिक सुखमपि वस्तुतो दु खमिति दु खहेतुत्वाद् 'दु ख' कर्म वेदयतीति. काकुपाठान् प्रश्न, निर्वचनं तु यदुदीर्णं तद्वेदयति, अनुदीर्णस्य हि कर्मणो वेदनमेव नास्ति तस्मादुदीर्णं वेदयति, नानुदीर्णं, न च बन्धा-नन्तरमेवोदेति अतोऽवश्यं वेद्यमप्येक न वेदयति इत्येवं व्यप-दिश्यते, अवश्य वेद्यमेव च कर्म "कडाण कम्माण ण मोक्खो अत्थि" इति वचनादिति। एवं 'जाव वेमाणिए' इत्यनेन चतु-र्विंशतिदण्डक सूचित, स चैवम्---'नेरइए णं भन्ते! सयंकड' मित्यादि। एवमेकत्वेन दण्डक, तथा बहुत्वेनान्य, स चैवम्— 'जीवा णं भत्ते! सयकड दुक्खं वेदती'त्यादि तथा 'नेरइयाणं भत्ते! सयकडं दुक्ख'मित्यादि, नन्वेकार्थे योऽर्थो बहुत्वेऽपि स एवेति किं बहुत्वप्रश्नेन? इति, अत्रोच्यते, क्वचिद्वस्तुनि एकत्वबहुत्वयोरर्थविशेषो दृष्टो यथा सम्यक्त्वादेः एक जीवमा-श्रित्य षट्षष्टिसागरोपमाणि साधिकानि स्थितिकाल उक्तो नाना-जीवानाश्रित्य पुन सर्वाद्धा इति, एवमत्रापि सभवेदिति शङ्कायां बहुत्वप्रश्नो न दुष्ट अव्युत्पन्नमतिशिष्यव्युत्पादनार्थत्वाद्वेति॥ अथायुःप्रधानत्वान्नारकादिव्यपदेशस्यायुराश्रित्य दण्डकद्वयम्— एतस्य चेयं वृद्धोक्तभावना—यदा सप्तमक्षितावायुर्बद्धं पुनश्च

कालान्तरे परिणामविशेषात्तृतीयधरणीप्रायोग्यं निर्वर्त्तितं वासुदेवेनेव तत्तादृशमङ्गीकृत्योच्यते—पूर्वबद्ध कश्चिन्न वेदयति, अनुदीर्णत्वात्तस्य, यदा पुनर्यत्रैव बद्ध तत्रैवोत्पद्यते तदा वेदयती-त्युच्यते, तथैव तस्योदिततत्वादिति ॥

मूलम्–से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?, हंता गोयमा ! जाव परिणमइ ॥ जण्णं भंते ! अत्थित्त अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तं किं पयोगसा वीससा ?, गोयमा ! पयोगसावि तं, वीससावि तं । जहा ते भंते ! अत्थित्त अत्थित्ते परिणमइ तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ? जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा ते अत्थितं अत्थित्ते परिणमइ ?, हंता गोयमा ! जहा मे अत्थितं अत्थित्ते परिणमइ तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ तहा मे अत्थित्त अत्थित्ते परिणमइ ॥ से णूणं भंते ! अत्थितं अत्थिते गमणिज्जं ?, जहा परिणमइ दो आलावगा तहा ते इह गमणिज्जेणवि दो आलावगा भाणियव्वा जाव जहा मे अत्थितं अत्थिते गमणिज्जं ॥

—व्याख्या प्र० शत० १, उ० ३ सूत्र ३२ ॥

टीका—'से गूणमि'त्यादि 'अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ' त्ति, अस्तित्व——अगुल्यादे अङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वम्, उक्तञ्च—"सर्वमस्ति स्वरूपेण, पररूपेण नास्ति च। अन्यथा सर्वभावानामेकत्वं सम्प्रसज्यते ॥ १ ॥" तच्चेह ऋजुत्वादिपर्याय-रूपमवसेयम्, अङ्गुल्यादिद्रव्यास्तित्वस्य कथञ्चिदृजुत्वादिपर्या-याव्यतिरिक्तत्वात् अस्तित्वे—अङ्गुल्यादेरेवांगुल्यादिभावेन-सत्त्वे वक्रत्वादिपर्याय इत्यर्थ 'परिणमति' तथा भवति, इदमुक्तं भवति—द्रव्यस्य प्रकारान्तरेण सत्ता प्रकारान्तरसत्तायां वर्त्तते यथा मृद्द्रव्यस्य पिण्डप्रकारेण सत्ता घटप्रकारसत्तायामिति। 'नत्थित्त नत्थित्ते परिणमइ'त्ति नास्तित्वं—अगुल्यादेरंगुष्ठादि-भावेनासत्त्व तच्चांगुष्ठादिभाव एव, ततश्चागुल्यादेर्नास्तित्वमगुष्ठा-द्यस्तित्वरूपमगुल्यादेर्नास्तित्वे अंगुष्ठादे पर्यायान्तरेणास्तित्वरूपे परिणमति, यथा मृदो नास्तित्वं तन्त्वादिरूप मृन्नास्तित्वरूपे पटे इति, अथवाऽस्तित्वमिति—धर्मधर्मिणोरभेदात् सद्वस्तु अस्तित्वे—सत्त्वे परिणमति, तत्सदेव भवति, नात्यन्तं विनाशि स्याद् विना-शस्य पर्यायान्तरगमनमात्ररूपत्वात्, दीपादिविनाशस्यापि तमि-स्रादिरूपतया परिणामात् तथा 'नास्तित्वं' अत्यन्ताभावरूपं यत् खरविषाणादि तत् 'नास्तित्वे' अत्यन्ताभाव एव वर्त्तते, नात्यन्त-मसत सत्वमस्ति, खरविषाणस्येवेति, उक्त च—"नासतो जायते भावो, नाभावो जायते सत।" अथवाऽस्तित्वमिति

धर्मभेदात् सद् 'अस्तित्वे' सत्त्वे वर्त्तते, यथा पट पटत्व एव, नास्तित्वं चासत् 'नास्तित्वे वर्त्तते, यथा अपटोऽपटत्व एवेति ॥ अथ परिणामहेतुदर्शनायाह—'ज ण'मित्यादि अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ' त्ति पर्याय पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थ 'नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ' त्ति वस्त्वन्तरस्य पर्यायस्तत्पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थ, 'पओगस' त्ति सकारस्यागमिकत्वात् 'प्रयोगेण' जीवव्यापारेण 'वीसस' त्ति यद्यपि लोके विश्रसाशब्दो जरापर्यायतया रूढस्तथाऽपीह स्वभावार्थो दृश्य, इह प्राकृतत्वाद् 'वीससाए'त्ति वाच्ये 'वीससा' इत्युक्तमिति, अत्रोत्तरम्—'पयोगसावि तं'ति, यथा शुभ्राभ्रमशुभ्राभ्रतया, नास्तित्वस्यापि नास्तित्वपरिणामे प्रयोगविश्रसयोरेतान्येवोदाहरणानि, वस्त्वन्तरापेक्षया मृत्पिण्डादेरस्तित्वस्य नास्तित्वात्, सत्सदेव स्यादिति व्याख्यानान्तरेऽप्येतान्येवोदाहरणानि पूर्वोत्तरावस्थयो सद्रूपत्वादिति, यदपि—'अभावोऽभाव एव स्याद्' इति व्याख्यात तत्रापि प्रयोगेणापि तथा विस्रसयाऽपि अभावोऽभाव एव स्यान् न प्रयोगादे साफल्यमिति व्याख्येयमिति ॥ अथोक्तहेत्वोरुभयत्र समता भगवदभिमततां च दर्शयन्नाह—'जहा ते' इत्यादि, 'यथा' प्रयोगविश्रसाभ्यामित्यर्थ. 'ते' इति तव मतेन अथवा सामान्येनास्तित्वपरिणाम प्रयोगविस्रसाजन्य उक्त सामान्यश्च विधि क्वचिदतिशयवति वस्तुन्यन्यथाऽपि स्याद् अतिशयवांश्च भगवानिति तमाश्रित्य परिणामान्यथात्वमाशंकमान आह—'जहा ते' इत्यादि 'ते' इति तव

सम्बन्धि अस्तित्व, शेष तथैवेति ॥ अथोक्तस्वरूपस्यैवास्य सत्यत्वेन प्रज्ञापनीयतां दर्शयितुमाह—'से णूण'मित्यादि, अस्तित्वमस्तित्वे गमनीय सद्वस्तु सत्यत्वेनैव प्रज्ञापनीयमित्यर्थ, 'दो आलावग' त्ति' 'से णूणं भते ! अत्थित्त अत्थित्ते गमणिज्ज'मित्यादि 'पओगसा वि तं वीससावि त' इत्येतदन्त एक, परिणामभेदाभिधानात्, 'जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्ज'मित्यादि 'तहा मे अत्थित्त अत्थित्ते गमणिज्ज'मित्येतदन्तस्तु द्वितीयोऽस्तित्वनास्तित्वपरिणामयो समताऽभिधायीति ॥

मूलम्- जीवे णं भन्ते गब्भं वक्कममाणे किं सइंदिए वक्कमइ अणिंदिए वक्कमइ ? गोयमा ! सिय सइंदिए वक्कमइ, सिय अणिंदिए वक्कमइ, से केणट्ठे णं० ?, गोयमा ! दव्विंदियाइं पडुच्च अणिंदिए वक्कमइ, भाविंदियाइं पडुच्च सइंदिए वक्कमइ, से तेणट्ठे णं० । जीवे ण भन्ते ! गब्भं वक्कममाणे किं ससरीरी वक्कमइ असरीरी वक्कमइ ? गोयमा ! सिय ससरीरी व० सिय असरीरी वक्कमइ, से केणट्ठे ण ? गोयमा ! ओरालियवेउव्वियआहारयाइं पडुच्च असरीरी व० तेयाकम्मा० प० सस० वक्क० से तेणट्ठे णं गोयमा !० ।

—व्याख्या प्रज्ञप्ति प्रथम शतक, उद्देश्य ७, सूत्र ६१ ॥

टीका—'गब्भ वक्कममाणे' त्ति गर्भं व्युत्क्रामन् गर्भे उत्पद्यमान इत्यर्थ 'दव्विंदियाइ' त्ति निर्वृत्त्युपकरणलक्षणानि, तानि हीन्द्रियपर्याप्तौ सत्या भविष्यन्तीत्यनिन्द्रिय उत्पद्यते, 'भाविंदियाइ' त लब्ध्युपयोगलक्षणानि, तानि च ससारिण' सर्वावस्थ भावीनीति। 'ससरीरि'त्ति सह शरीरेणेति सशरीरी इन्समासान्तभावात्, 'असरीरि'त्ति शरीरवान् शरीरी, तन्निषेधादशरीरी 'वक्कमइ' त्ति, व्युत्क्रामति—उत्पद्यत इत्यर्थ ।

मूलम्—पुरिसे णं भते ! कच्छंसि वा १ दहसिवा २ उदगंसि वा ३ दवियसि वा ४ वलयसि वा ५ नूमंसि वा ६ गहणंसि वा ७ गहणविदुग्गसि वा ८ पव्वयंसि वा ९ पव्वयविदुग्गसि वा १० वणंसि वा ११ वण-विदुग्गंसि वा १२ मियवित्तीए मियसंकप्पे मिय-पणिहाणे मियवहाए गता एए मिएत्तिकाउं अन्नयरस्स मियस्स वहाए कूडपासं उद्दाइ, ततो णं भंते! से पुरिसे कतिकिरिए पणत्ते ?, गोयमा ! जाव च णं से पुरिसे कच्छंसि वा १२ जाव कूडपासं उद्दाइ ताव च णं से पुरिसे सिय तिकि० सिय चउ० सिय पच०। से केणट्ठेणं सिय ति० सिय च० सिय प०?, गोयमा ! जे भविए उद्दवणयाए णो बंधणयाए णो मारणयाए ताव च णं से पुरिसे काइयाए अहि-गरणियाए पाउसियाए तिहिं किरियाहिं पुट्ठे, जे भविए उद्दवणयाएवि बंधणयाएवि णो मार-

णयाए ताव च णं से पुरिसे काइयए अहिगरणि-
याए पाउसियाए परिग्रावणियाए चउहिं किरि-
याहिं पुट्टे, जे भविए उद्दवणयाएवि बंधणयाए
वि मारणयाए वि ताव च ण से पुरिसे काइयाए
अहिगरणियाए पाउसियाए जाव पंचहिं पुटठे, से
तेणटठेणं जाव पंचकिरिए, (सू० ६५) पुरिसे णं
भंते! कच्छसि वा जाव वणविदुग्गसि वा तण इ
ऊसवियं २ अगणिकाय निस्सरइ ताव च णं से
भंते! से पुरिसे कति किरिए ?, गोयमा! सिय
ति किरिए, सिय चउ कि० सिय पंच०, से
केणटठेणं ? गोयमा! जे भविए उस्सवणयाए
तिहिं, उस्सवणयाए विनिस्सिरणयाएवि नो
दहणयाए चउहिं, जे भविए उस्सवणयाए वि
निस्सिरणयाए वि दहणयाए वि तावं च ण से
पुरिसे काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुटठे, से
तेण० गोयमा ! ० ॥ ६६ ।

पुरिसेणं भंते, कच्छंसि वा जाव वणविदुग्गंसि
वा मियवित्तीए मिएसंकप्पे मियपणिहाणे
मियवहाय गता एए मिएत्तिकाउं अन्नयरस्स
मियस्स वहाय उसुं निसिरइ, तता णं भंते! से

पुरिसे कइ किरिए ?, गोयमा ! सिय ति किरिए, सिय चउ किरिए सिय पंच किरिए, से केण-ट्ठेणं ?, गोयमा ! जे भविए निस्सिरणयाए नो विद्धंसणयाए वि नो मारणयाए तिहिं, जे भविए निस्सिरणयाए वि विद्धंसणयाए वि नो मारणयाए चउहिं, जे भविए निस्सिरणयाए वि विद्धंसणयाए वि मारणयाए वि तावं च णं से पुरिसे जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से तेणं॰गोयमा ! सिय ति किरिए सिय चउ किरिए सिय पंच किरिए ॥६७॥ पुरिसेणं भंते ! कच्छंसि वा जाव अन्नयरस्स मियस्स वहाए आययकन्नाययं उसुं आयामेत्ता चिट्ठिज्जा, अन्नयरे पुरिसे मग्गओ आगम्म सयपाणिणा असिणा सीसं छिन्देज्जा से य उसुं ताए चेव पुव्वायामणयाए तं विंधेज्जा सेणं भंते ! पुरिसे किं मियवेरेणं पुट्ठे पुरिसवेरेणं पुट्ठे ? गोयमा ! जे मियं मारेइ से मियवेरेणं पुट्ठे, जे पुरिसं मारेइ से पुरिसवेरेणं पुट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव से पुरिसे वेरेणं पुट्ठे ? से नूणं गोयमा ! कज्जमाणे कडे संधिज्ज-माणे संधिए निवत्तिज्जमाणे निवत्तिए निसिरिज्ज-

आणे निसिट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया ?, हंता भगवं कज्ज-माणे कडे जाव निसिट्ठत्ति वत्तव्वं सिया, से तेणट्ठे णं गोयमा ! जे मियं मारेइ से मियवेरेणं पुट्ठे, जे पुरिसं मारेइ से पुरिसवेरेणं पुट्ठे, ।। अंतो छण्हं मासाणं मरइ काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, बाहिं छण्हं मासाण मरइ काइयाए जाव परियावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे ॥

—श्री भगवती सूत्र, शतक प्रथम, उद्देश ८ सूत्र ६८ ॥

टीका—'कच्छंसि वा'त्ति 'कच्छे' नदीजलपरिवेष्टिते वृक्षादि-मति प्रदेशे'दहंसि वा'त्ति ह्रदे प्रतीते 'उदगंसि वा'त्ति उदके—जलाश्रयमात्रे 'दवियंसि वा'त्ति 'द्रविके' तृणादिद्रव्यसमुदाये वलयंसि वा'त्ति 'वलये वृत्ताकारनद्याद्युदककुटिलगतियुक्तप्रदेशे 'नूमंसि वा' त्ति 'नूमे' अवतमसे 'गहणंसि वा'त्ति 'गहने' वृक्ष-वल्लीलतावितानवीरुत्समुदाये 'गहण विदुग्गंसि वा'त्ति गहन-विदुर्गे, पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्ल्यादिसमुदाये 'पव्वयंसि वा' त्ति पर्वते 'पव्वय विदुग्गंसि वा'त्ति पर्वतसमुदाये 'वणंसि वा'त्ति 'वने' एकजातीयवृक्षसमुदाये 'वणविदुग्गंसि वा'त्ति नाना-विधवृक्षसमूहे 'मिगवित्तीए'त्ति मृगैः—हरिणैर्वृत्ति—र्जीविका यस्य स मृगवृत्तिक, स च मृगरक्षकोऽपि स्यादिति अत आह— 'मियसंकप्पे'त्ति मृगेषु संकल्पो—वधाध्यवसायः छेदनं वा

यस्यासौ मृगसकल्प, स च चलचित्ततयाऽपि भवतीत्यत आह—'मियपणिहाणे'त्ति मृगवधैकाग्रचित्त 'मिगवहाए' त्ति मृगवधाय 'गंत'त्ति गत्वा कच्छादाविति योग 'कूडपासं' ति कूट च—मृगग्रहणकारण गर्त्तादि पाशश्च—तद्बन्धनमिति कूटपाशम 'उद्दाइ'त्ति मृगवधायोद्दालि, रचयतीत्यर्थ, 'तओ ण' ति तत कूटपाशकरणात् 'कइकिरिए'त्ति कति क्रिय ?, क्रियाश्च कायिक्यादिका, 'जे भविए'त्ति यो भव्यो योग्य कर्तेति यावत् 'जाव च ण'ि त शेप, यावन्त कालमित्यर्थ कस्या कर्त्ता इत्याह— 'उद्दवणयाए'त्ति कूटपाशधारणताया, ताप्रत्ययश्चेह स्वार्थिक, 'ताव च ण'ति तावन्त काल 'काइयाए'त्ति गमनादिकायचेष्टा- रूपया 'अहिगरणयाए'त्ति, अधिकरणेन—कूटपाशरूपेण निर्वृता या सा तथा तया पाउसियाए'त्ति प्रद्वेषो—मगेपु दुष्ट- भावस्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी तथा 'तिहि किरियाहिं'ति क्रियन्त इति क्रिया—चेष्टाविशेषा, 'पारितावणयाए'त्ति परितापन- प्रयोजना पारितापनिकी, सा च बद्धे सति मृगे भवति प्राणाति- पातक्रिया च घातिते इति १ ॥ 'ऊसविए'त्ति उत्सर्यं ऊसिक्कि- उणेत्यर्थ ऊर्द्ध्वीकृत्येति वा 'निसिरइ'त्ति निसृजति—क्षिपति यावदिति शेष २ । 'उसु'ति बाणम् 'आययकण्णायत्तं'ति कर्णं यावदायत —आकृष्ट कर्णायत आयतं प्रयत्नवद् यथा भवती त्येवं कर्णायत आयतकर्णायतस्तम 'आयामेत्ता'त्ति 'आयम्य'

आकृष्य 'मग्गओ'त्ति पृष्ठत 'सयपाणिणा'न्ति 'स्वकपाणिना' स्वकहस्तेन 'पुव्वायामणयाए'त्ति पूर्वाकर्षणेन, 'से णं भंते! पुरिसे'त्ति 'स' शिरच्छेत्ता पुरुष 'सियवेरेणं'त्ति इह वैरं वैरहेतुत्वाद् वध पापं वा वैरं वैरहेतुत्वादिति, अथ शिरच्छेतृ-पुरुपहेतुकत्वादिपु निपातस्य कथं धनुर्द्धरपुरुषो मृगवधेन स्पृष्ट इत्याकृतवतो गौतमस्य तदभ्युपगतमेवार्थमुत्तरतया प्राह— क्रियमाण धनु काण्डादि कृतमिति व्यपदिश्यते ?, युक्तिस्तु प्राग्वत्, तथा सन्धीयमान—प्रत्यञ्चायामारोप्यमाण काण्डं धनुर्वाऽऽरोप्य-मानप्रत्यञ्च 'सन्धितं' कृतसन्धान भवति ?, तथा 'निर्वृत्यमान' नितरा वर्त्तुलीक्रियमाण प्रत्यञ्चाकर्षणेन निर्वृत्तित—वृत्तीकृत मण्ड-लाकार कृत भवति ?, तथा निसृज्यमाणं' निक्षिप्यमाणं काण्ड निसृष्ट भवति ?,यदा च निसृष्ट तदा'निसृज्यमानतायां धनुर्द्धरेण कृतत्वात् तेन काण्डं निसृष्टं भवति, काण्डनिसर्गाच्च मृगस्तेनैव मारित', ततश्चोच्यते—'जे मियं मारेइ' इत्यादीति ॥ ३ ॥ इह च क्रिया प्रक्रान्ता, ताश्चानन्तरोक्ते मृगादिवधे यावत्यो यत्र काल-विभागे भवन्ति तावतीस्तत्र दर्शयन्नाह—'अन्तो छण्ह'मित्यादि, षण्मासान् यावत् प्रहारहेतुकं मरण परतस्तु परिणामान्तरापादित-मितिकृत्वा षण्मासादूर्ध्वं प्राणातिपातक्रिया न स्यादिति हृदयम्, एतच्च व्यवहारनयापेक्षया प्राणातिपातक्रियाव्यपदेशमात्रोप-दर्शनार्थमुक्तम्, अन्यथा यदा कदाऽप्यधिकृतं प्रहारहेतुक मरणं भवति तदैव प्राणातिपातक्रिया, इति ४ ॥

मूलम्-दो भंते ! पुरिसा सरिसया सरित्तया सरिव्वया सरिसभंडमत्तोवगरणा अन्नमन्नेण सद्धिं संगामं संगामेन्ति, तत्थ णं एगे पुरिसे पराइणइ एगे पुरिसे पराइज्जइ, से कहमयं भंते ! एव ?, गोयमा सवीरिए पराइणइ अवीरिए पराइज्जइ, से केणट्ठेणं जाव पराइज्जइ ?, गोयमा ! जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं णो बद्धाइं णो पुट्ठाइं जाव नो अभिसमन्नागयाइं नो उदिन्नाइं उवसंताइं भवन्ति से णं पराइणइ, जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं बद्धाइं जाव उदिन्नाइं नो उवसंताइं भवन्ति से णं पुरिसे पराइज्जइ से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ सवीरिए पराइणइ अवीरिए पराइज्जइ ॥

—श्री भगवती सूत्र १।८।७०॥

टीका—'सरिसय'त्ति सदृशकौ कौशलप्रमाणादिना 'सरित्तय'त्ति 'सदृक्त्वचौ, सदृशच्छवी वा 'सरिव्वय' त्ति सदृग्वयसौ समानयौवनाद्यवस्थौ 'सरिसभंडमत्तोवगरण'त्ति भाण्डं-भाजनं मृन्मयादि मात्रो—मात्रया युक्त उपधि स च कांस्यभाजनादि-भोजनभण्डिका भाण्डमात्रा वा—गणिमादिद्रव्यरूप परिच्छेदः उपकरणानि—अनेकधाऽऽवरणप्रहरणादीनि ततः सदृशानि भाण्डमात्रोपकरणानि ययोस्तौ तथा, अनेन च समानविभूतिकत्वं

तयोरभिहित, 'सवीरिएत्ति सवीर्यः 'वीरियवज्झाइ'ति वीय वध्यं येषा तानि तथा ॥

मूलम्—जीवा णं भंते! किं सवीरिया अवीरिया ?, गोयमा! सवीरियावि अवीरियावि, से केणट्ठेणं? गोयमा! जीवा दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—संसारसमावन्नगा य असंसारसमावन्नगा य, तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अवीरिया, तत्थ णं जे ते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—सेलेसिपडिवन्नगा य असेलेसिपडिवन्नगा य, तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं अवीरिया, तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—जीवा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सवीरियावि अवीरियावि। नेरइया णं भंते! किं सवीरिया अवीरिया? गोयमा! नेरइया लद्धिवीरिएणवि सवीरिया करणवीरिएणं सवीरियावि अवीरियावि! से केणट्ठेणं ?, गोयमा! जेसिं णं नेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणवि

सवीरिया करणवीरिएणवि सवीरिया, जेमि णं नेरइया ण नत्थि उट्ठाणे जाव परक्कमे ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया करणवीरिएणं अवीरिया, से तेणट्ठेणं०, जहा नेरइया एव जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, मणुस्सा जहा ओहिया जीवा, नवरं सिद्धवज्जा भाणियव्वा, वाणमंतरज इसवेमाणिया जहा नेरइया, सेवं भंते! सेवं भंते'त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र १।८।७१॥

टीका—सिद्धाण 'अवीरिय'त्ति सकरणवीर्याभावादवीर्या सिद्धा 'सेलेसियडिवन्नगा य'त्ति शीलेश—सर्वसंवररूपचरण-प्रभुस्तस्येयमवस्था, शैलेशो वा - मेरुस्तस्येव याऽवस्था स्थिरतासा-धर्म्यात्सा शैलेशी, सा च सर्वथा योगनिरोधे पंचह्रस्वाक्षरो-च्चारकालमाना ता प्रतिपन्नका ये ते तथा, 'लद्धिवीरिएण सवीरिय' त्ति वीर्यान्तरायक्षयक्षयोपशमतो या वीर्यस्य लब्धि सैव तद्धे-तुत्वाद्वीर्य लब्धिवीर्यतेन सवीर्या, एतेपा च क्षायिकमेव लब्धि-वीर्यं 'करणवीरिएण' ति लब्धिवीर्यकार्यभूता क्रिया करण तद्रूपं करणवीर्यम, 'करणवीरिएण सवीरियावि अवीरियावि' त्ति तत्र सवीर्या' उत्थानादिक्रियावन्त. अवीर्यास्तूत्थानादिक्रियाविकला, ते चापर्याप्त्यादिकालेऽवगन्तव्या इति। 'नवरं सिद्धवज्जा भाणि-यव्व त्ति, औधिकजीवेषु सिद्धा सन्ति मनुष्येषु तु नेति, मनुष्यदण्डके वीर्यं प्रति सिद्धस्वरूप नाध्येयमिति ॥

मूलम्-खंदयाति समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चाय० एवं वयासी--से नूणं तुम खंदया! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं णियठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेव पुच्छिए मागहा! किं सअंते लोए अणंते लोए एवं तं जेणेव मम अंतिए तेणेव हव्वमागए, से नूणं खंदया! अयमट्ठे समट्ठे? हंता अत्थि, जेविय ते खंदया! अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिन्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था--किं सअंते लोए अणंते लोए? तस्सविय णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदया! चउव्विहे लोए पन्नत्ते, तंजहा--दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ। दव्वओ णं एगे लोए सअंते?, खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयण-कोडाकोडीओ परिक्खेवेणं प० अत्थि पुण सअन्ते?, कालओ णं लोए ण कयावि न आसी न कयावि न भवति न कयावि न भविस्सति भुविंसु य भवति य भविस्सइ य धुवे णितिए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, णत्थि पुण से अन्ते २, भावओ णं लोए अणंता वण्ण पज्जवा गंध० रस०

फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा अणंता गरुय-लहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते ४, सेत्तं खंदगा ! दव्वओ लोए सअन्ते खेतओ लोए सअन्ते कालतो लोए अणंते भावओ लोए अणंते । जेवि य ते खंदया ! जाव सअन्ते जीवे अणंते जीवे, तस्सवि य णं अयमट्ठे—एवं खलु जाव दव्वओ णं एगे जीवे सअन्ते, खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जपएसिए असंखेज्ज-पदेसोगाढे अत्थि पुण से अन्ते,, कालओ णं जीवे न कयावि न आसि जाव निच्चे नत्थि पुण से अंते, भावओ णं जीवे अणंता णाणपज्जवा अणंता दंसणप० अणंता चरित्तप० अणंता अगुरुलहुयप० नत्थि पुण से अन्ते, सेत्तं दव्वओ जीवे सअन्ते खेत्तओ जीवे सअन्ते कालओ जीवे अणंते, भावओ जीवे अणंते । जेवि य ते खंदया ! पुच्छा०(इमेयारूवे चिंतिए जाव सअन्ता सिद्धि अणंता सिद्धी) तस्स वि य णं अयमट्ठे खंदया ! मए एवं खलु चउव्विहा सिद्धी पण्ण०, त०—दव्वओ ४, दव्वओ णं एगा सिद्धी खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसय-सहस्साइं आयामविक्खंभेणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयण

सहस्साइं दोन्नि य अउणापन्नजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं अत्थि पुण से अन्ते, कालओ णं सिद्धी न कयावि न आसि, भावओ य जहा लोयस्स तहा भाणियव्वा, तत्थ दव्वओ सिद्धी सअन्ता खे० सिद्धी सअन्ता का० सिद्धी अणंता भावओ सिद्धी अणंता। जेवि य ते खंदया! जाव किं अणंते सिद्धे तं चेव जाव दव्वओ णं एगे सिद्धे सअन्ते, खे० सिद्धे असंखेज्जपएसिए असंखेज्ज-पदेसोगाढे, अत्थि पुण से अन्ते, कालओ णं सिद्धे सादीए अपज्जवसिए नत्थि पुण से अन्ते, भा० सिद्धे अणंता णाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा जाव अणंता अगुरुलहुयप० नत्थि पुण से अन्ते, सेत्तं दव्वओ सिद्धे सअन्ते खेत्तओ सिद्धे सअन्ते का० सिद्धे अणंते भा० सिद्धे अणंते। जेवि य ते खंदया! इमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुपज्जित्था— केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा हायति वा?, तस्सवि य णं अयमट्ठे एवं खलु खंदया! मए दुविहे मरणे पण्णत्ते, तंजहा—बालमरणे य पंडियमरणे य. से किं त बालमरणे?, २ दुवालसविहे प०, त० वलयमरणे वसट्टमरणे अंतो-

सत्थमरणे तब्भवमरणे गिरिपडणे तरुपडणे जल-प्पवेसे जलणप्प० विसभक्खणे सत्थोवाडणे वेहाणसे गिद्धपट्ठे ! इच्चेतेणं खंदया ! दुवालसविहेणं बाल-मरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ तिरियमणुदेव० अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरि-यट्टइ, सेत्तं मरमाणे वड्ढइ २, सेत्त बालमरणे। से किं त पंडियमरणे ?, २, दुविहे प० त०— पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खाणे य। से किं त पाओवगमणे ?, २ दुविहे प० त०— नीहारिमे य अनीहारिमे य नियमा अप्पडिकमे सेत्तं पाओवगमणे। से किं त भत्तपच्चक्खाणे ?, २ दुविहे प० त०—नीहारिमे य अनीहारिमे य नियमा सपडिक्कमे, सेत्त भत्तपच्चक्खाणे। इच्चेते खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ जाव वीईवयति, सेत्तं मरमाणे हायइ, सेत्तं पंडिय-मरणे। इच्चेएणं खंदया ! दुविहेणं मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ वा हायति वा ॥

—श्री भगवती सूत्र २।१।९१॥

टीका—'दव्वओ ण एगे लोए सअन्ते त्ति पञ्चास्तिकायमयैकद्रव्यत्वाल्लोकस्य सान्तोऽसौ, 'आयामविक्खंभेण' त्ति आयामो—दैर्ध्यं विष्कम्भो—विस्तार 'परिक्खेवेण'त्ति परिधिना 'भुविंसु य'त्ति अभवत् इत्यादिभिश्च पदैः पूर्वोक्तपदानामेव तात्पर्यमुक्तं 'धुवे' त्ति ध्रुवोऽचलत्वात् स चानियतरूपोऽपि स्यादत आह—'णियए'त्ति नियत एकस्वरूपत्वात्, नियतरूप कादाचित्कोऽपि स्यादत आह—'सासए'त्ति आह—'अक्खए'त्ति अक्षयोऽविनाशित्वात् अयं च बहुतरप्रदेशापेक्षयाऽपि स्यादित्यत आह—'अव्वए'त्ति अव्ययस्तत्प्रदेशानामव्ययत्वात्, अयं च द्रव्यतयाऽपि स्यादित्याह—'अवट्ठिए'त्ति अवस्थित पर्यायाणामनन्ततयाऽवस्थितत्वात्, किमुक्तं भवति ?—नित्य इति, वण्णपज्जव त्ति वर्णविशेषा एकगुणकालत्वादयः, एवमन्येऽपि गुरुलघुपर्यवास्तद्विशेषा बादरस्कन्धानाम्, अगुरुलघुपर्यवा अणूना सूक्ष्मस्कन्धानाममूर्त्तानां च, 'नाणपज्जव'त्ति ज्ञानपर्याया ज्ञानविशेषा बुद्धिकृता वाऽविभागपरिच्छेदा, अनन्ता गुरुलघुपर्याया औदारिकादिशरीराण्याश्रित्य, इतरे तु कार्मणादिद्रव्याणि जीवस्वरूपं चाश्रित्येति। 'जेवि' य ते खन्दया! पुच्छ त्ति अनेन समस्त सिद्धिप्रश्नसूत्रमुपलक्षणत्वादुत्तरसूत्रांशश्च सूचित तच्च द्वयमप्येवम्—'जेवि य ते खंदया इमेयारूवे जाव किं सअन्ता सिद्धी तस्स वि य णं अयमट्ठे, एवं

खलु मए खंदया ! चउव्विहा, सिद्धी पण्णत्ता, तंजहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओत्ति, दव्वओणं एगा सिद्धि'त्ति, इह सिद्धिर्यद्यपि परमार्थतः सकलकर्मक्षयरूपा सिद्धाधाराऽऽकाश-देशरूपा वा तथाऽपि सिद्धाधाराकाशदेशप्रत्यासन्नत्वेनेषत्प्राग्भारा पृथिवी सिद्धिरुक्ता, 'किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं' ति किञ्चि-न्न्यूनगव्यूतद्वयाधिके द्वे योजनशते एकोनपञ्चाशदुत्तरे भवत इति । 'वलयमरणे'त्ति वलतो—बुभुक्षापरिगतत्वेन वलवलायमा-नस्य—संयमाद्वा भ्रश्यतो (यत्) मरणं तद्वलन्मरणं, तथा वशेन—इन्द्रियवशेन ऋतस्य—पीडिताय दीपकलिकारूपाक्षिप्त-चक्षुषः शलभस्येव यन्मरणं तद् वशार्तमरणं, तथाऽन्तःशल्यस्य द्रव्यतोऽनुद्धृततोमरादेः भावतः सातिचारस्य यन्मरणं तदन्त-शल्यमरणं, तथा तस्मै भवाय मनुष्यादेः सतो मनुष्यादावेव वद्धायुषो यन्मरणं तत्तद्भवमरणं, इह च नरतिरश्चामेवेति, 'सत्थोवाडणे'त्ति शस्त्रेण—क्षुरिकादिना अवपाटनं—विदारणं देहस्य यस्मिन्मरणे तच्छस्त्रावपाटनम्, 'वेहाणसे'त्ति विहायसि —आकाशे भवं वृक्षशाखाद्युद्बन्धनेन यत्तन्निरुक्तिवशाद्वैहानसं, गिद्धपट्ठे'त्ति गृध्रैः पक्षिविशेषैर्गृद्धैर्वा—मांसलुब्धैः शृगालादिभिः स्पृष्टस्य यत्तद् गृध्रस्पृष्टं वा गृध्रैर्वा भक्षितस्य—स्पृष्टस्य यत्तद् गृध्रस्पृ-ष्टम् । 'दुवालसविहेणं बालमरणेणं'त्ति उपलक्षणत्वादन्यानपि बालमरणान्तःपातिना मरणेन म्रियमाण इति 'वड्ढइ वड्ढइ'त्ति

संसारवर्द्धनेन भृशं वर्धते जीव, इद हि द्विर्वचनं भृशार्थे इति । 'पाओवगमणे'त्ति पादपस्येवोपगमनम्—अस्पन्दतयाऽवस्थानं पादपोमगमन, इदं च चतुर्विधाहारपरिहारनिष्पन्नमेव भवतीति । 'नीहारिमेय'त्ति निर्हारेण विर्वृत्त यतन्निर्हारिम प्रतिश्रये यो म्रियते तस्यैतत, तत्कडेवरस्य निर्हारणात्, अनिर्हारिम तु योऽटव्यां म्रियते इति । यच्चान्यत्रेह स्थाने इगितमरणमभिधीयते तद्भक्तप्रत्याख्यानस्यैव विशेष इति नेह भेदेन दर्शितमिति ।

मूलम्—अह भंते ! ओदणे कुम्मासे सुरा एए णं किंसरीराति वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! ओदणे कुम्मासे सुराए य जे घणे दव्वे एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च वणस्सइजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया सत्थपरिणामिआ अगणिज्झामिआ अगणिज्झूसिया अगणिसेविया अगणिपरिणामिया अगणिजीवसरीरा वत्तव्वं सिया, सुराए य जे दवे एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च आउजीवसरीरा, तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिकायसरीराति वत्तव्वं सिया । अहन्नं भंते ! अए तंबे तउए सीसए उवले कसट्टिया एए णं किंसरीराइ वत्तव्वं सिया ?, गोयमा ! अए तंबे तउए सीसए उवले कसट्टिया,

एए णं पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च पुढविजीवसरीर तओ पच्छा, सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीराति वत्तव्वं सिया। अहएणं भंते! अट्ठी अट्ठिज्झामे चम्मे चम्मज्झामे रं मे २ सिंगे २ खुरे २ नखे २ एते णं किंसरीराति वत्तव्वं सिया?, गोयमा! अट्ठी चंमे रोमे सिंगे खुरे नहे एए णं तसपाण-जीवसरीरा अट्ठिज्झामे चम्मज्झामे रोमज्झामे सिंग० खुर० णहज्झामे एए णं पुव्वभावपण्ण-वणं पडुच्च तसपाणजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवत्ति वत्तव्व सिया। अह भंते! इंगाले छारिए भुसे गोमए एस णं किंसरीरो वत्तव्वं सिया? गोयमा! इंगाले छारिए भुसे गोमए एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणमियावि जाव पंचिंदियजीवसरीरप्पओगपरिणामियावि तओ पच्छा सत्थातिया जाव अगणिजीवसरीराति वत्तव्व सिया॥

—श्री भगवती सूत्र ५।२।१८१॥

टीका—'अहे' त्यादि, 'एए ण' ति एतानि णमित्यलकारे 'किंसरीर'त्ति केषां शरीराणि किंशरीराणि? 'सुराए य जे घणे'त्ति

सुरायां द्वे द्रव्ये स्याता—घनद्रव्य द्रवद्रव्य च तत्र यद् घनद्रव्य 'पुव्वभावपन्नवणं पडुच्च'त्ति अतीतपर्यायप्ररूपणामङ्गीकृत्य वनस्पतिशरीराणि, पूर्वं हि ओदनादयो वनस्पतय 'तओ पच्छ'त्ति वनस्पतिजीवशरीरवाच्यत्वानन्तरमग्निजीवशरीराणीति वक्तव्यं स्यादिति सम्बन्ध, किम्भूतानि सन्ति ? इत्याह—'सत्थातीय'त्ति शस्त्रेण—उदूखलमुशलयन्त्रकादिना करणभूतेनातीतानि—अतिक्रान्तानि पूर्वपर्यायमिति शस्त्रातीतानि 'सत्थपरिणामिय'त्ति शस्त्रेण परिणामितानि—कृतानि नवपर्यायाणि शस्त्रपरिणामितानि, ततश्च 'अगणिज्झामिय'त्ति वन्हिना ध्यामितानि—श्यामीकृतानि स्वकीयवर्णत्याजनात्, तथा 'अगणिज्झूसिय'त्ति अग्निना शोपितानि पूर्वस्वभावक्षपणात् अग्निना सेवितानि वा 'जुषी प्रीतिसेवनयो' इत्यस्य धातो प्रयोगात् 'अगणिपरिणामियाइ'त्ति सजाताग्निपरिणामानि उष्णयोगादिति, अथवा 'सत्थातीता' इत्यादौ शस्त्रमग्निरेव 'अगणिज्झामिया' इत्यादि तु तद् व्याख्यानमेवेति 'उवले'त्ति दह दग्धपापाण, 'कसट्टिय'त्ति क(षप)ट्ट, 'अट्ठिज्झामि'त्ति अस्थि च तद्ध्याम च—अग्निना ध्यामलीकृतम्—आपादितपर्यायान्तरमित्यर्थ, 'इगाले' इत्यादि, 'अङ्गार' निर्ज्वलितेन्धनम् 'छारि'त्ति क्षारक—भस्म, 'कुसे'त्ति बुस 'गोमय'त्ति छगणम्, इह च बुसगोमयौ भूतपर्यायानुवृत्त्या दग्धावस्थौ ग्राह्यौ अन्यथाऽग्निध्यामितादिवक्ष्यमाणविशेषणानामनुपपत्ति स्यादिति। एते

पूर्वभावप्रज्ञापनां प्रतीत्यैकेन्द्रियजीवै· शरीरतया प्रयोगेण— स्वव्यापारेण परिणामिता ये ते तथा एकेन्द्रियशरीराणीत्यर्थ, 'अपि समुच्चये, यावत्करणाद् द्वीन्द्रियजीवशरीरपरिणामिता अपीत्यादि दृश्य, द्वीन्द्रियादिजीवशरीरपरिणतत्वं च— यथासम्भवमेव न तु सर्वप्रदेष्विति, तत्र पूर्वसङ्गारो भस्म चैकेन्द्रिया दशरीररूपं भवति, एकेन्द्रियादिशरीराणामिन्धनत्वात्, बुसं तु यवगोधूमहरितावस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्, गोमयस्तु तृणाद्यवस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्, द्वीन्द्रियादीनां तु गवादिभिर्भक्षणे द्वीन्द्रियादिशरीरमिति ॥

मूलम्—अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमातिक्खंति जाव परुवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता एवभूय वेदणं वेदेंति से कहमेय भंते! एव ?, गोयमा ! जएणं ते अन्नउत्थिया एवमातिक्खंति जाव वेदेंति जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमातिक्खामि जाव परूवेमि अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूय वेदणं वदेंति अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति, से केणट्ठेण अत्थेगतिया ? त चेव उच्चारेयव्वं, गोयमा ! जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा तहा वेदणं वेदेंति ते णं

पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति, जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा नो तहा वेदणं वेदेंति तेणं पाणा भूया जीवा सत्ता अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति स तेणट्ठेणं तहेव। नेरइया णं भंते! किं एवंभूयं वेदणं वेदेंति अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति?, गोयमा! नेरइया णं एवंभूयं वेदणं वेदेंति अनेवंभूयंपि वेदणं वेदेंति। से केणट्ठेणं तं चेव?, गोयमा! जे णं नेरइया जहा कडा कम्मा तहा वेयणं वेदेंति ते णं नेरइया एवंभूयं वेदणं वेदेंति जे णं नेरतिया जहा कडा कम्मा णो तहा वेदणं वेदेंति ते णं नेरइया, अनेवंभूयं वेदणं वेदेंति. से तेणट्ठेणं, एवं जाव वेमाणिया संसारमंडलं नेयव्वं॥

—श्री भगवती सूत्र ५।५।२०० ॥

टीका—तत्र च 'एवंभूयं वेयणं'ति यथाविधं कर्म निबद्ध-मेवंप्रकारतयोत्पन्नां 'वेदनां' असातादिकर्मोदयं 'वेदयंति' अनु-भवन्ति, मिथ्यात्वं चैतद्वादिनामेवं—न हि यथा बद्धं तथैव सर्वं कर्मानुभूयते, आयुः कर्मणो व्यभिचारात्, तथाहि—दीर्घकाला-नुभवनीयस्याप्यायुः कर्मणोऽल्पीयसाऽपि कालेनानुभवो भवति, कथमन्यथाऽपमृत्युव्यपदेशः सर्वजनप्रसिद्धः स्यात्?, कथं वा

महासंयुगादौ जीवलक्षाणामप्येकदैव मृत्युरूपपद्यतेति ?, ''अरणेवं-भूयपि'त्ति यथा बद्धं कर्म नैवंभूता अनेवंभूता अतस्तां, श्रूयन्ते ह्यागमे कर्म्मरण स्थितिविघातरसघातादय इति, 'एवं जाव वेमारिणया संसारमंडलं नेयव्वं'त्ति 'एव' उक्तक्रमेण वैमानिकावसानं ससारिजीवचक्रवालं नेतव्यमित्यर्थ ॥

मूलम्—जीवा णं भंते ! किं महावेयणा महानिज्जरा १ महा वेदणा अप्प निज्जरा २ अप्पवेदणा महानिज्जरा ३ अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ४ ? गोयमा ! अत्थेगइया जीवा महावेदणा महानिज्जरा १ अत्थेगतिया जीवा महावेदणा अप्पानिज्जरा २ अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा ३ अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा अप्पानिज्जरा ४ । से केणट्ठेणं०?, गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेदणे महानिज्जरे, छट्ठसत्तमासु पुढवीसु नेरइया महा-वेदणा अप्पनिज्जरा, सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेदणे महानिज्जरे, अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पानिज्जरा, सेवं भंते २ त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र ६।१।२३१।

मूलम्—वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं सादीए सपज्जवसिए ? सादिए अपज्जवसिते २ अणादीए

सपज्ज० ३ अणा० अपज्ज० ४ ?, गोयमा ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए सादीए सपज्जवसिए नो सादीए अप० नो अणा० स० नो अणा० अप०। जहा णं भंते! 'वत्थस्स पोग्गलोवचए सादीए सपज्ज० नो सादीए अप० नो अणा० सप० नो अणा० अप० तहा णं जीवाणं कम्मोवचए पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगतियाणं जीवाणं कम्मोवचए सादीए सपज्जवसिए अत्थे० अणादीए सपज्जवसिए अत्थे० अणादीए अपज्जवसिए नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए सादीए अप०। से केण० ?, गोयमा! ईरियावहियाबंधयस्स कम्मोवचए सादीए सप० भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए सपज्जवसिए अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए अपज्जवसिए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति अत्थे० जीवाणं कम्मोवचए सादीए नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिए, वत्थे णं भंते! किं सादीए सपज्जवसिए चउभंगो ?, गोयमा ! वत्थे सादीए सपज्जवसिए अवसेसा तिन्निवि पडिसेहेयव्वा। जहा णं भंते! वत्थे सादीए सपज्जवसिए नो सादीए अपज्ज० नो अणादीए सप० नो

अनादीए अपज्जवसिए तहा णं जीवाणं किं सादीया सपज्जवसिया ?, चउभंगो पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगतिया सादीया सपज्जवसिया चत्तारिवि भाणियव्वा । से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! नेरतिया तिरिक्खजोणिया मनुस्सा देवा गतिरागतिं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया सिद्धि द्धा गति पडुच्च सादीया अपज्जवसिया, भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणादीया सपज्जवसिया अभवसिद्धिया संसार पडुच्च अणादीया अपज्जवसिया, से तेणट्ठेणं० ॥

—श्री भगवती सूत्र ६।३।२३५ ॥

टीका—सादिद्वारे 'ईरियावहियबन्धयस्से' त्यादि, ईर्यापथो—गमनमार्गस्तत्रभवमैर्यापथिकं, केवलयोगप्रयोगप्रत्ययं कर्मेत्यर्थः तद्बंधकस्योपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य सयोगिकेवलिनश्चेत्यर्थ, ऐर्यापथिककर्मणो हि अबद्धपूर्वस्य बन्धनात् सादित्व, अयोग्य-वस्थायां श्रेणिप्रतिपाते वाऽबन्धनात् सपर्यवसितत्वं, 'गतिरागई पडुच्च'त्ति नारकादिगतौ गमनमाश्रित्य सादय आगमनमाश्रित्य सपर्यवसिता इत्यर्थः 'सिद्धा गइ' पडुच्च साइया अपज्जवसिय'त्ति, इहाद्दोपपरिहारावेवम्—"साईअपज्जवसिया सिद्धा न य नाम तीयकालंमि । आसि कयाइवि सुण्णा सिद्धी सिद्धेहिं सिद्धंते ॥१॥ सव्व साइ सरीरं न य नामादि मय देहसब्भावो । कालाणाइ-

पाणओ जहा व राइंदियाईण ॥ २ ॥ सव्वो माई सिद्धो न यादिमो विज्जई तहा न च । सिद्धी सिद्धा सया निद्दिट्ठा रोह-पुच्छाए ॥ ३ ॥" त्ति, 'त च'ति तच्च सिद्धानादित्त्वमिष्यते. यत 'सिद्धी सिद्धा ये'त्यादीति । 'भवसिद्धिया लद्धि'मित्यादि, भवसिद्धिकाना भव्यत्वलब्धि सिद्धत्वेऽपैतीतिकृत्वाऽनादिः सपर्यवसिता चेति ॥

सूत्रम्-समणोवासगस्स णं भंते ! पुव्वामेव तसपाणसमा-रंभे पच्चक्खाए भवति पुढविसमारंभे अपच्चक्खाए भवइ से णं पुढविं खणमाणेऽण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा से णं भंते ! तं वयं अतिचरति ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवायाए आउट्टति ॥ समणोवासयस्स णं भंते ! पुव्वामेव वणस्सइसमारंभे पच्चक्खाए से य पुढविं खणमाणे अन्नयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा से णं भंते ! तं वयं अतिचरति ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, नो खलु तस्स अइवायाए आउट्टति ॥

—श्री भगवती सूत्र ॥ ७।१।२६३ ॥

टीका-तत्र च 'तसपाणसमारंभे'त्ति, त्रसवध 'नो खलु से तस्स अतिवायाए आउट्टति'त्ति न खलु असौ 'तस्स' त्रसप्राणस्य अतिपाताय वधाय 'आवर्तते' प्रवर्तत इति न संकल्पवधोऽस्यो,

सङ्कल्पवधादेव च निवृत्तोऽसौ, न चैप तस्य संपन्न इति नासावतिचरति व्रतं ॥

मूलम्—से णूणं भंते ! सव्वपाणेहि सव्वजीवेहिं सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं भवति दुपच्चक्खायं भवति ?, गोयमा ! जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणस्स णो एव अभिसमन्नागयं भवति इमे जीवा इमे अजीवा इमे तसा इमे थावरा तस्स ण सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स णो सुपच्चक्खायं भवति दुपच्चक्खायं भवति एवं खलु से दुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणो नो सच्च भासं भासइ मोस भासं भासइ, एव खलु से मुसावाई सव्वपाणेहि जाव सव्वसत्तेहिं तिविह तिविहेणं असंजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंतबाले यावि भवति, जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहि पच्चक्खायमिति वदमाणस्स एवं अभिसमन्नागयं भवइ—इमे जीवा इमे अजीवा इमे तसा इमे थावरा तस्स णं सव्वपाणेहि जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं

भवति नो दुपच्चक्खायं भवति, एवं खलु से सुपच्च-क्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणे सच्चं भासं भासइ नो मोसं भासं भासइ, एवं खलु से सच्चवादी सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं असंजयविरयपडिहयपच्चक्खायपाव-कम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिए यावि भवति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव सिय दुपच्चक्खायं भवति ॥

—श्री भगवती सूत्र ७।२।२७१ ॥

टीका—'से नूण'मित्यादि, 'सिय सुपच्चक्खायं सिय दुपच्चक्खायं' इति प्रतिपाद्य यत्प्रथमं दुष्प्रत्याख्यानत्ववर्णनं कृतं तद्यथासङ्ख्यन्यायत्यागेन यथाऽऽसन्नतान्यायमङ्गीकृत्येति द्रष्टव्यं, 'नो एवं अभिसमन्नागयं भवति'त्ति 'नो' नैव 'एवं' इति वक्ष्यमाण-प्रकारमभिसमन्वागतं—अवगतं स्यात्, 'नो सुपच्चक्खायं भवति'त्ति ज्ञानाभावेन यथावदपरिपालनात् सुप्रत्याख्यानत्वाभावः, 'सव्व-पाणेहिं'ति सर्वप्राणेषु 'तिविहं'ति त्रिविधं कृतकारितानुमतिभेद-भिन्नं योगमाश्रित्य 'तिविहेणं'ति त्रिविधेन मनोवाक्कायलक्षणेन करणेन 'असंजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे'त्ति संयतो—यथा-[illegible] विरतो—[illegible] प्रतिहतानि—अतीतकाल-[illegible] पापानि

कर्माणि येन स तथा, तत, संयतादिपदानां कर्मधारयस्ततस्तन्निषेधात् असयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, अत एव 'सकिरिए'त्ति कायिक्यादिक्रियायुक्त सकर्मबन्धनो वाऽत एव 'असंवुडे त्ति असंवृताश्रवद्वार अत एव 'एगंतदंडे'त्ति एकान्तेन—सर्वथैव परान् दण्डयतीत्येकान्तदण्ड, अत एव 'एकान्तबाल' सर्वथा बालिशोऽज्ञ इत्यर्थ ॥

मूलम्—जीवाणं भंते ? किं सासया असासया ? गोयमा ! जीवा सिय सासया सिय असासया । से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ—जीवा सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया भावट्ठयाए असासया, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जाव सिय असासया । नेरइया णं भंते ! किं सासया असासया ?, एवं जहा जीवा तहा नेरइयावि, एवं जाव वेमाणिया जाव सिय सासया सिय असासया । सेव भते ! सेव भते ! ॥

—श्री भगवती-सूत्र ॥७।२।२७४॥

टीका—'दव्वट्ठयाए'त्ति जीवद्रव्यत्वेनेत्यर्थ 'भावट्ठयाए'त्ति नारकादिपर्यायत्वेनेत्यर्थ ॥

मूलम्—नेरइया णं भते ! किं सासया असासया ?, गोयमा ! सिय सासया सिय असासया, से केणट्ठेण भंते !

एवं वुच्चइ नेरइया सिय सासया, सिय असासया?, गोयमा ! अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए सासया वोच्छित्तिणयट्ठयाए असासया, से तेणट्ठेणं जाव सिय सासया सिय असासया, एवं जाव वेमाणिया जाव सिय असासया । सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र ॥७।३।२८०॥

टीका—'अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए'त्ति अव्यवच्छित्तिप्रधानो नयोऽव्यवच्छित्तिनयस्तस्यार्थो — द्रव्यमव्यवच्छित्तिनयार्थस्तद्भावस्तत्ता तयाऽव्यवच्छित्तिनयार्थतया—द्रव्यमाश्रित्य शाश्वता इत्यर्थः 'वोच्छित्तिणयट्ठयाए'त्ति व्यवच्छित्तिप्रधानो यो नयस्तस्य योऽर्थः—पर्यायलक्षणस्तस्य यो भावः सा व्यवच्छित्तिनयार्थता तया २ पर्यायानाश्रित्य अशाश्वता नारका इति ॥

सूत्रम्-जीवेणं भंते ! किं पोग्गली पोग्गले ?, गोयमा ! जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि ?, गोयमा ! से जहा नामए छत्तेणं छत्ती दंडेणं दंडी घडेणं घडी पडेणं पडी करेणं करी एवामेव गोयमा ! जीवेवि सोइंदियचक्खिंदियघाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियाइं पडुच्च पोग्गली, जीवं पडुच्च पोग्गले, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जीवे पोग्गलीवि पोग्गलेवि ।

नेरइए णं भंते ! किं पोग्गली०?, एवं चेव, एव जाव वेमाणिया नवरं जस्स जइ इंदियाइं, तस्स तइवि भाणियव्वाइं। सिद्धे णं भते! किं पोग्गली पोग्गले ?, गोयमा ! नो पोग्गली पोग्गले, से केणट्ठेणं भंते ? एवं वुच्चइ जाव पोग्गले ?, गोयमा ! जीवं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ सिद्धे नो पोग्गली पोग्गले। सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र ८।२।३६१ ॥

टीका—'पोग्गलीवि'त्ति पुद्गला —श्रोत्रादिरूपा विद्यन्ते। यस्यासौ पुद्गली, 'पुग्गलेवि'त्ति पुद्गल इति सञ्ज्ञा जीवस्य। ततस्तद्योगात् पुद्गल इति। एतदेव दर्शयन्नाह 'से केणट्ठेण' मित्यादि ॥

मूलम्—तए ण से जमाली अणगारे अन्नया कयावि ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के हट्ठे तुट्ठे जाए अरोए वलियसरीरे सावत्थीओ नयरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ २ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपानयरी जेणेव पुन्नभद्दे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—

जहा णं देवाणुप्पियाणं बहवे अंतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्था भवेत्ता छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कंता णो खलु अहं तहा छउमत्थे भवित्ता छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कमिए, अहन्न उप्पन्नणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेणं अवक्कमिए, तए णं भगवं गोयमे जमालिं अणगारं एवं वयासी-णो खलु जमाली ?, केवलिस्स णाणे वा दंसणे वा सेलंसि वा थंभंसि वा थूभंसि वा आवरिज्जइ वा णिवारिज्जइ वा, जइ णं तुमं जमाली ! उप्पन्नणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेणं अवक्कंते तो णं इमाइं दो वागरणाइं वागरेहि-सासए लोए जमाली ! असासए लोए जमाली ?, सासए जीवे जमाली ! असासए जीवे जमाली ?, तए णं से जमाली अणगारे भगवया गोयमेणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए जाव कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था, णो संचाएति भगवओ गोयमस्स किंचिवि पमोक्खमाइक्खित्तए तुसिणीए संचिट्ठइ जमालीति समणे भगवं महावीरे जमालिं अणगारं एवं वयासी-अत्थि णं जमाली ! मम बहवे अंतेवासी समणा

निग्गंथा छउमत्था जे णं एयं वागरणं वागरित्तए, जहा णं अहं, नो चेव णं एयप्पगारं भासं भासित्तए जहा णं तुमं; सासए लोए जमाली ! जन्न कयावि णासि ण कथावि ण भवति ण कदावि ण भविस्सइ भुविं च भवइ य भविस्सइ य धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, असासए लोए जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ, सासए जीवे जमाली ! ज न कयाइ णासि जाव णिच्चे असासए जीवे जमाली जन्नं नेरइए भवित्ता तिरिक्ख-जोणिए भवइ तिरिक्खजोणिए भवित्ता मणुस्से भवइ मणुस्से भवित्ता देवे भवइ ॥

—श्री भगवती सूत्र ६।३३।३८७ ॥

टीका— न कयाइ नासी'त्यादि तत्र न कदाचिन्नासीदना-दित्वात् न कदाचिन्न भविष्यति अपर्यवसितत्वात्, किं तर्हि ?, 'भुविं चे'त्यादि ततश्चाय त्रिकालभावित्वेनाचलत्वादेव शाश्वत प्रतिक्षणमप्यसत्त्वस्याभावात् शाश्वतत्वादेव 'अक्षयः' निर्विनाश, अक्षयत्वादेवाव्यय प्रदेशापेक्षया, नित्यस्तदुभया-पेक्षया, एकार्था वैते शब्दा ॥

मूलम्—सुत्तत्तं भंते ! साहू, जागरियत्त साहू ? जयंती !

अहम्मियाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, धम्मियाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अहम्मियाणं जाव साहू ?, जयंती ! जे इमे जीवा अहम्मिया अहम्माणुया अहम्मिट्ठा अहम्मक्खाई अहम्मपलोई अहम्मपलज्जमाणा अहम्मसमुदायारा अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसि णं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, एए णं जीवा सुत्ता समाणा नो बहूणं पाणभूयजीवसत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जाव परियावणयाए वट्टंति. एए णं जीवा सुत्ता समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो बहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति, एएसिं जीवाणं सुत्तत्तं साहू जयंती ! जे इमे जीवा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसि णं जीवाणं जागरियत्तं साहू एए णं जीवा जागरा समाणा बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए जाव अपरियावणियाए वट्टंति. ते णं जीवा जागरमाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा बहूहिं धम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति, एए णं जीवा जागरमाणा धम्मजागरियाए अप्पाणं जागरइत्तारो भवंति,

निग्गंथा छउमत्था जे णं एयं वागरणं वागरित्तए, जहा णं अहं, नो चेव णं एयप्पगारं भासं भासित्तए जहा णं तुमं; सासए लोए जमाली ! जन्न कयावि णासि ण कयावि ण भवति ण कदावि ण भविस्सइ भुविं च भवइ य भविस्सइ य धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, असासए लोए जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ, सासए जीवे जमाली ! ज न कयाइ णासि जाव णिच्चे असासए जीवे जमाली जन्नं नेरइए भवित्ता तिरिक्खजोणिए भवइ तिरिक्खजोणिए भवित्ता मणुस्से भवइ मणुस्से भवित्ता देवे भवइ ॥

—श्री भगवती सूत्र ६।३३।३८७ ॥

टीका— न कयाइ नासी'त्यादि तत्र न कदाचिन्नासीदनादित्वात् न कदाचिन्न भविष्यति अपर्यवसितत्वात्, किं तर्हि ?, 'भुविं चे'त्यादि ततश्चायं त्रिकालभावित्वेनाचलत्वादेव शाश्वत प्रतिक्षणमप्यसत्त्वस्याभावात् शाश्वतत्वादेव 'अक्षयः' निर्विनाश, अक्षयत्वादेवाव्यय प्रदेशापेक्षया, नित्यस्तदुभयापेक्षया, एकार्था वैते शब्दा ॥

मूलम्—सुत्तत्तं भंते ! साहू, जागरियत्तं साहू ? जयंती !

अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्त साहू अत्थेगतियाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ अत्थेगइयाणं जाव साहू ?, जयंती! जे इमे जीवा अहम्मिया अहम्माणुया अहम्मिट्ठा अहम्मक्खाई अहम्मपलोई अहम्मपलज्जमाणा अहम्मसमुदायारा अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसि णं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, एए णं जीवा सुत्ता समाणा नो बहूणं पाणभूयजीवसत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जाव परियावणयाए वट्टंति, एए णं जीवा सुत्ता समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो बहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति, एएसिं जीवाणं सुत्तत्त साहू, जयंती! जे इमे जीवा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसिणं जीवाणं जागरियत्तं साहू, एए णं जीवा जागरा समाणा बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए जाव अपरियावणियाए वट्टंति, ते णं जीवा जागरमाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभय वा बहूहिं धम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति, एए णं जीवा जागरमाणा धम्मजागरियाए अप्पाणं जागरइत्तारो भवंति.

एएसि णं जीवाणं जागरियत्तं साहू, से तेणट्ठेणं जयंती! एव वुच्चइ अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू ॥ बलियत्तं भंते! साहू दुब्बलियत्तं साहू?, जयंती! अत्थेगइयाणं जीवाणं बलियत्तं साहू अत्थेगइयाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जाव साहू?, जयंती! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव विहरंति एएसि णं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू, एए णं जीवा एवं जहा सुत्तस्स तहा दुब्बलियस्स वत्तव्या भाणियव्वा, बलियस्स जहा जागरस्स तहा भाणियव्वं जाव संजोएत्तारो भवंति, एएसि णं जीवाणं बलियत्तं साहू, से तेणट्ठेणं जयंति! एव वुच्चइ तं चेव साहू ॥ दक्खत्तं भंते! साहू आलसियत्तं साहू?, जयंती! अत्थेगतियाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू अत्थेगतियाणं जीवाणं आलसियत्तं साहू, से केणट्ठेणं भंते! एव वुच्चइ तं चेव जाव साहू?, जयंती! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव विहरंति एएसि णं जीवाणं आलसियत्तं साहू, एए णं जीवा आलसा समाणा नो बहूणं जहा सुत्ता आलसा भाणियव्वा, जहा

जागरा तहा दक्खा भाणियव्वा जाव संजोएत्तारो भवंति, एए णं जीवा दक्खा समाणा बहूहिं आयरियवेयावच्चेहिं जाव उवज्झाय० थेर० तवस्सि० गिलाणवेया० सेहवे० कुलवेया० गणवेया० संघवेया० साहम्मियवेयावच्चेहिं अत्ताणं संजोएत्तारो भवंति, एएसि णं जीवाणं दक्खत्तं साहू, से तेणटठेणं तं चेव जाव साहू ॥

—श्री भगवती सूत्र १२।२।४४३॥

टीका—तत्र च 'सुत्तत्त'त्ति निद्रावशत्वं 'जागरियत्त'त्ति जागरणं जागरः सोऽस्यास्तीति जागरिकस्तद्भावो जागरिकत्वम् 'अहम्मिय'त्ति धर्मेण-श्रुतचारित्ररूपेण चरन्तीति धार्मिकास्तन्निषेधादधार्मिका, कुत एतदेवमित्यत आह—'अहम्माणुया' धर्म—श्रुतरूपमनुगच्छन्तीति धर्मानुगास्तन्निषेधादधर्मानुगा, कुत एतदेवमित्यत आह—'अहम्मिट्ठा' धर्म—श्रुतरूप एवेष्टो—वल्लभ पूजितो वा येषां ते धर्मेष्टा धर्मिणां वेष्टा अतिशयेन वा धर्मिणो धर्मिष्ठास्तन्निषेधादधर्मिष्ठा अधर्मेष्टा अधर्म्मिष्ठा वा, अत एव 'अहम्मक्खाई' न धर्ममाख्यान्तीत्येवशीला अधर्माख्यायिन अथवा न धर्मात् ख्यातिर्येषा ते अधर्मख्यातय, 'अहम्मपलोइ' त्ति न धर्ममुपादेयतया प्रलोकयन्ति ये तेऽधर्मप्रलोकिन, अहमम्मपलज्जण'त्ति न धर्मे प्ररज्यते—आसजन्ति ये तेऽधर्म-

प्ररञ्जना, एवच 'अहम्मसमुदाचार'त्ति न धर्मरूप —चारित्रात्मकः समुदाचार —समाचार सप्रमोदो वाऽऽचारो येषां ते तथा, अत एव 'अहम्मेण चेवे'त्यादि, 'अधर्मेण' चारित्रश्रुतविरुद्ध-रूपेण 'वृत्तिं' जीविकां 'कल्पयन्त' कुर्वाणा इति ॥ अनन्तरं सुप्तजाग्रतां साधुत्वं प्ररूपितम् अथ दुर्बलादीनां तथैव तदेव प्ररूपयन् सूत्रद्वयमाह — 'बलियत्तं'ति बलमस्यास्तीति बलिकस्तद्-भावो बलिकत्व 'दुब्बलियत्तं'ति, दुष्टं बलमस्यास्तीति दुर्बलि-कस्तद्भावो दुर्बलिकत्वं ॥

मूलम्—नेरइयाणं भंते ! कतिवन्ना जाव कतिफासा पन्न ।?, गोयमा ! वेउव्वियतेयाइं पडुच्च पंचवन्ना पंचरसा दुगंधा अट्ठफासा पण्णत्ता, कम्मगं पडुच्च पचवन्ना पंचरसा दुगंधा चउफासा पण्णत्ता, जीवं पडुच्च अवन्ना जाव अफासा पण्णत्ता, एवं जाव थणिय०, पुढविकाइयपुच्छा, गोयमा ! ओरालियतेयगाइं पडुच्च पचवन्नो जाव अट्ठफासा पण्णत्ता, कम्मगं पडुच्च जहा नेर०, जीवं पडुच्च तहेव. एवं जाव चउरिंदि०, नवरं वाउक्काइया ओरा० वेउ० तेयगाइं पडुच्च पंचवन्ना जाव अट्ठफासा पण्णत्ता, सेसं जहा नेरइयाण, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा वाउक्काइया, मणुस्साणं पुच्छा ओरालियवेउव्विय-

आहारगतेयगाइं पडुच्च पचवन्ना जाव अट्ट-फासा पण्णत्ता, कम्मगं जीवं च पडुच्च जहा नेर०, वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा नेर०, धम्मत्थिकाए जाव पोग्गल० एए सव्वे अवन्ना, नवरं पोग्ग० पंचवन्ने पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे पण्णत्ते, णाणावरणिज्जे जाव अंतराइए एयाणि चउफासाणि, कण्हलेसा णं भंते! कइवन्ना० ?, पुच्छा दव्वलेसं पडुच्च पचवन्ना जाव अट्ठफासा पण्णत्ता, भावलेसं पडुच्च अवन्ना ४, एवं जाव सुक्कलेसा, सम्मद्दिट्ठि ३ चक्खुदसणे ४ आभि-णिवोहियणाणे जाव विभंगणाणे आहारसन्ना जाव परिग्गहसन्ना एयाणि कम्मगसरीरे चउफासे, मणजोगे वयजोगे य चउफासे, कायजोगे अट्ठ-फासे, सागारोवओगे य अणागारोवओगे य अवन्ना। सव्वदव्वा णं भंते! कतिवन्ना ?, पुच्छा, गोयमा! अत्थेगतिया सव्वदव्वा पचवन्ना जाव अट्ठफासा पण्णत्ता अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवन्ना चउ-फासा पण्ण। अत्थेगतिया सव्वदव्वा एगगंधा एगवण्णा एगरसा दुफासा पन्नत्ता अत्थेगतिया सव्वदव्वा अवन्ना जाव अफासा पन्नत्ता, एवं

सव्वपएसावि सव्वपज्जवावि, तीयद्धा अवन्नो जाव अफासा पण्णत्ता, एव अणागयद्धावि, एवं सव्वद्धावि ॥

—श्री भगवती सूत्र १२।५।४५०॥

टीका—'वेउव्वियतेयाइं पडुच्च'त्ति वैक्रियतैजसशरीरे हि बादरपरिणामपुद्गलरूपे ततो बादरत्वात्तयोर्नारकाणामष्टस्पर्शत्व, 'कम्मग पडुच्च'त्ति कार्म्मणं हि सूक्ष्मपरिणामपुद्गलरूपमतश्चतु स्पर्शं, ते च शीतोष्णस्निग्धरूक्षा 'धम्मित्थिकाए, इह यावत्करणादेवं दृश्यम्—'अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए आवलिया मुहुत्ते'इत्यादि, 'दव्वलेस पडुच्च'त्ति इह द्रव्यलेश्यावर्णं भावलेस पडुच्च'त्ति भावलेश्या—आन्तर परिणाम, इह च कृष्णलेश्यादीनि परिग्रहसंज्ञाऽवसानानि अवर्णादीनि जीवपरिणामत्वात्, औदारिकादीनि चत्वारि शरीराणि पंचवर्णादिविशेषणाणि अष्टस्पर्शानि च बादरपरिणाम-पुद्गलरूपत्वात् सर्वत्र च चतु स्पर्शत्वे सूक्ष्मपरिणाम कारणं अष्टस्पर्शत्वे च बादरपरिणाम कारणं वाच्यमिति, 'सव्वदव्व'त्ति सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि 'अत्थेगइया सव्वदव्वा पंचवन्ने' त्यादि बादरपुद्गलद्रव्याणि प्रतीत्योक्त, सर्वद्रव्याणा मध्ये कानिचित्पञ्चवर्णादीनीति भावार्थ 'चउफासा' इत्येतच्च पुद्गलद्रव्याण्येव सूक्ष्माणि प्रतीत्योक्त 'एगगधे'त्यादि च परमाणुद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं, यदाह परमाणुद्रव्यमाश्रित्य-'कारणमेव तदन्त्य सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणु । एकरसवर्ण-गन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥१॥ इति, स्पर्शद्वय च सूक्ष्मसम्बन्धिनां

चतुर्णां स्पर्शानामन्यतरदविरुद्ध भवति, तथाहि—स्निग्धो णलक्षण स्निग्धशीतलक्षणं वा रूक्षशीतलक्षण रूक्षो णलक्षण वेति 'अवण्णे' त्यादि च धर्मास्तिकायादिद्रव्याण्याश्रित्योक्तं, द्रव्याश्रितत्वात्प्रदेश पर्य-वाणां द्रव्यसूत्रानन्तरं तत्सूत्रं, तत्र च प्रदेशा–द्रव्यस्य निर्विभागा अशा पर्यवास्तु धर्मा ते चैवंकरणादेव वाच्या —'सव्वपएसा ण भंते ! कइवण्णा ? पुच्छा, गोयमा ! अत्थेगइया सव्वपएसा पचवन्ना जाव अट्ठफासा' इत्यादि। एव च पर्यवसूत्रमपि, इह च मूर्त्तद्रव्याणा प्रदेशा पर्यवाश्च मूर्त्तद्रव्यवत् पञ्चवर्णादय अमूर्त्तद्रव्याणा चामूर्त्तद्रव्यवदवर्णादय इति। अतीताद्धादित्रय चामूर्त्तत्वादवर्णादिकम् ॥

मूलम्–आया भंते ! रयणप्पभापुढवी अन्ना रयणप्पभा पुढवी ? गोयमा ! रयणप्पभा सिय आया सिय नो आया सिय अवत्तव्व आयाति य नो आयाइ य, से केण-ट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ रयणप्पभापुढवी सिय आया सिय नो आया, सिय अवत्तव्वं आताति य नो आताति य ?, गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया, परस्स आदिट्ठे नो आया तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं, रयणप्पभा पुढवी आयाति य नो आयाति य, से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो आयाति य। आया भंते ! सक्करप्पभा पुढवी जहा रयणप्पभा

पुढवी तहा सक्करप्पभाएवि एवं जाव अहे सत्तमा। आया भंते! सोहम्मकप्पे पुच्छा, गोयमा! सोहम्मे कप्पे सिय आया सिय नो आया जाव नो आयाति य, से केणट्ठेणं भंते! जाव नो आयातिय?, गोयमा! अप्पणो आइट्ठे आया परस्स आइट्ठे नो आया तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं आताति य नो आताति य, से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नो आयाति य, एवं जाव अच्चुए कप्पे। आया भंते! गेविज्जविमाणे अन्ने गेविज्जविमाणे एवं जहा रयणप्पभा तहेव, एवं अणुत्तरविमाणावि, एवं ईसिपब्भारावि। आया भंते! परमाणुपोग्गले अन्ने परमाणुपोग्गले? एवं जहा सोहम्मे कप्पे तहा परमाणुपोग्गलेवि भाणियव्वे॥ आया भंते! दुपए-सिए खंधे अन्ने दुपएसिए खंधे?, गोयमा! दुपए-सिए खंधे सिय आया १ सिय नो आया २ सिय अव्वत्तव्वं आयाइ य नो आयातिय ३ सिय आया य नो आया य ४ सिय आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ५ सिय नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ६, से केणट्ठेणं भंते! एवं तं चेव जाव नो आयाति य अवत्तव्वं आयाति

य न। आयाति य गोयमा ! अप्पणो आदिट्ठे आया १ परस्स आदिट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं दुपएसिए खंध आयातिय नो आयाति य ३ देसे आदिट्ठे सब्भापज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे दुप्पएसिए खंधे आया य नो आया य ४ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे दुपएसिए खधे आया य अवत्तव्व आयाइ य नो आयाइ य ५ देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे दुपएसिए खंधे नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ६ से तेणट्ठेण तं चेव जाव नो आयाति य ॥ आया भंते ! तिपएसिए खधे अन्ने तिपएसिए खधे ?, गोयमा ! तिपएसिए खधे सिय आया १ सिय नो आया २ सिय अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ सिय आया य नो आया य ४ सिय आया य नो आयाओ य ५ सिय आयाउ य नो आया य ६ सिय आया य अवत्तव्व आयाति य नो आयाति य ७ सिय आयाइय अवत्तव्वाइं आयाओ य नो आयाओ य ८ सिय आयाओ य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ९ सिय नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १०

सिय आया य अवत्तव्वाइं आयाओ य नो आयाओ य ११ सिय नो आयाओ य अवत्तव्वं आयाइ य नो आयाइ य १२ सिय आया य नो आया य अवत्तव्व आयाइ य नो आयाइ य १३ से केणट्ठेणं भंते! एव वुच्चइ तिपएसिए खंधे सिय आया एव चेव उच्चारेयव्वं जाव सिय आया य नो आयो य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य?, गोयमा! अप्पणो आइट्ठे आया १ परस्स आइट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे तिपएसिए खधे आया य नो आया य ४ देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आइट्ठा असब्भावपज्जवे तिपएसिए खधे आया य नो आयाओ य ५ देसा आइट्ठा सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे तिपएसिए खधे आयाओ य नो आया य ६ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य अवत्तव्व आयाइ य नो आयाइ य ७ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे आया य अवत्तव्वाइं

आयाउ य नो आयाउ य ८ देसा आदिट्ठा सब्भा-
वपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए
खंधे आयाउ य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति
य ९ एए तिन्नि भंगा, देसे आदिट्ठे असब्भाव-
पज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे
नो आया य अवत्तव्वं आयाइ य नो आयाति य १०
देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा
तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे नो आया य अव-
त्तव्वाइं आयाउ य नो आयाउ य ११ देसा
आदिट्ठा असब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभय-
पज्जवे तिपएसिए खंधे नो आयाउ य अवत्तव्वं
आयाति य नो आयाति य १२ देसे आदिट्ठे
सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे
आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य
नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाइ य
१३ से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ तिपएसिए
खंधे सिय आया तं चेव जाव नो आयाति य॥
आया भंते! चउप्पएसिए खंधे अन्ने० पुच्छा.
गोयमा! चउप्पएसिए खंधे सिय आया १ सिय
नो आया २ सिय अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति

य ३ सिय आया य नो आया य ४ सिय आया य अवत्तव्व ४ सिय नो आया य अवत्तव्वं ४ सिय आया य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य आयाति य १६ सिय आया य नो आया य अवत्तव्वाइं आयाओ य नो आयाओ य १७ सिय आया य नो आयाओ य अवत्तव्व आयाति य नो आयाति य १८ सिय आयाओ य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १६। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ चउप्पउसिए खंधे सिय आया य ना आया य अवत्तव्वं तं चेव अट्ठे पडिउच्चारेयव्वं? गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया १ परस्स आदिट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भाव· पज्जवे चउभंगो, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य, देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा चउप्पएसिए खंधे भवइ

आया य नो आया य अवत्तव्इ आयाओ य नो आयाओ य १७ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा असब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभय-पज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य नो आयाओ य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १८ देसा आइट्ठा सब्भावपज्जवा देसे आइट्ठे असब्भवप० देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया-ओ य नो आया य अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य १९ से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ चउप्पएसिए खंधे सिय आया सिय नो आया सिय अवत्तव्वं निक्खेवे ते चेव भंगा उच्चारेयव्वा जाव नो आयाति य॥ आया भंते! पंचपएसिए खंधे अन्ने पंचपएसिए खंधे?, गोयमा! पंचपएसिए खंधे सिय आया १ सिय नो आया २ सिय अवत्तव्वं आयाति य नो आयाति य ३ सिय आया य नो आया य सिय अवत्तव्वं ४ नो आया य अवत्तव्वेण य ४ तियगसंजोगे एक्को ण पडइ, से केणट्ठेणं भंते! तं चेव पडिउच्चारेयव्वं ?, गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया १ परस्स आदिट्ठे नो आया २ तदुभयस्स आदिट्ठे अव-

सव्व २ देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे एव दुयगसंजोगे सव्वे पडंति तियगसंजोगे एक्को ण पडइ। छप्पएसियस्स सव्वे पडंति जहा छप्पएसिए एवं जाव अणंतपएसिए। सेवं भंते! सेवं भंतेत्ति जाव विहरति॥

—श्री भगवती सूत्र १२।१०।४६९।

टीका—आत्माधिकाराद्रत्नप्रभादिभावानात्मत्वादिभावेन चिन्तयन्नाह—'आया भंते!' इत्यादि, अतति— सतत गच्छति तांस्तान् पर्यायानित्यात्मा ततश्चात्मा—सद्रूपा रत्नप्रभा पृथिवी 'अन्न'त्ति अनात्मा असद्रूपेत्यर्थ 'सिय आया सिय नो आया'त्ति स्यात्सती स्यादसती 'सिय अवत्तव्व'ति आत्मत्वेनानात्मत्वेन च व्यपदेष्टु-मशक्य वस्त्विति भाव, कथमवक्तव्यम्? इत्याह—आत्मेति च नो आत्मेति च वक्तुमशक्यमित्यर्थ, 'अप्पणो आइट्ठे'त्ति आत्मन—स्वस्य रत्नप्रभाया एव वर्णादिपर्यायै 'आदिष्टे' आदेशे सति तैर्व्यपदिष्टा सतीत्यर्थ आत्मा भवति, स्वपर्यायपेक्षया सतीत्यर्थ, 'परस्स आइट्ठे नो आया'त्ति परस्य शर्करादिपृथिव्यन्तरस्य पर्यायैरादिष्टे—आदेशे सति तैर्व्यपदिष्टा सतीत्यर्थ, नोआत्मा—अनात्मा भवति, पररूपापेक्षयाऽसतीत्यर्थ 'तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्व'ति तयो स्वपरयोरुभय तदेव वोभय तदुभयं तस्य पर्यायैरादिष्टो—आदेशे सति तदुभयपर्यायैर्व्यपदेष्टेत्यर्थ,

'अवक्तव्यम्' अवाच्य वस्तु स्यात्, तथाहि—न ह्यसौ आत्मेति वक्तु शक्या, परपर्यायापेक्षयाऽनात्मत्वात्तस्या, नाप्यनात्मेति वक्तु शक्या, स्वपर्यायापेक्षया तस्या आत्मत्वादिति, अवक्तव्यत्व चात्मानात्मशब्दापेक्षयैव नतु सर्वथा, अवक्तव्यशब्देनैव तस्या उच्यमानत्वात्, अनभिलाप्यभावानामपि भावपदार्थवस्तुप्रभृतिशब्दैरनभिलाप्यशब्देन वाऽभिलाप्यत्वादिति । एव परमाणुसूत्रमपि ॥ द्विप्रदेशिकसूत्रे षड् भङ्गा, तत्राद्यास्त्रय सकलस्कन्धापेक्षा पूर्वोक्ता एव तदन्ये तु त्रयो देशापेक्षा, तत्र च गोयमे त्यत आरभ्य व्याख्यायते—'अप्पणो त्ति स्वस्य पर्यायै 'आदिट्ठे'त्ति आदिष्ट—आदेशे सति आदिष्ट इत्यर्थ द्विप्रदेशिकस्कन्ध आत्मा भवति १ एव परस्य पर्यायैरादिष्टोऽनात्मा २ तदुभयस्य—द्विप्रदेशिकस्कन्धतदन्यस्कन्धलक्षणस्य पर्यायैरादिष्टोऽवाचवक्तव्य वस्तु स्यात्, कथम ?, आत्मेति चानात्मेति चेति ३ तथा द्विप्रदेशत्वात्तस्य देश एक आदिष्ट, सद्भावप्रधाना—सत्तानुगता पर्यवा यस्मिन स सद्भावपर्यव, अथवा तृतीयाबहुवचनमिदम स्वपर्यवैरित्यर्थ, द्वितीयस्तु देश आदिष्ट, असद्भावपर्यव परपर्यायैरित्यर्थ, परपर्यवास्तु तदीयद्वितीयदेशसम्बन्धिनो वस्त्वन्तरसम्बन्धिनो वेति, ततश्चासौ द्विप्रदेशिक स्कन्ध आत्मा चेति नो आत्मा चेति ४, तथा तस्य देश आदिष्ट सद्भावपर्यवो देशश्चासद्भावपर्यवस्ततोऽस्मावात्मा चावक्तव्य चेति ५ तथा तस्य देश आदिष्टो-

ऽसद्भावपर्यवो देशस्तूभयपर्यवस्ततोऽसौ नो आत्मा चावक्तव्यं च स्यादिति ६, सप्तम पुनरात्मा च नो आत्मा चावक्तव्यं चेत्येवंरूपो न भवति द्विप्रदेशिके द्व्यंशत्वादस्य त्रिप्रदेशिकादौ तु स्यादिति सप्तभङ्गी ॥ त्रिप्रदेशिकस्कन्धे तु त्रयोदशभङ्गास्तत्र पूर्वोक्तेषु सप्तस्वाद्या सकलादेशास्त्रयस्तथैव तदन्येषु तु त्रिषु त्रयस्त्रय एकवचनबहुवचनभेदात्, सप्तस्त्वेकविध एव स्थापना चेत्थम्——

आ १	नो १	अव १
आ १ १ २	नो १ २ १	
आ १ १ २	अव १ २ १	
नो १ १ २	अव १ २ १	
आ १	नो १	अव १

यच्चेह प्रदेशद्वयेऽप्येकवचनं क्वचित्तत्तस्य प्रदेशद्वयस्यैक-प्रदेशावगाढत्वादिहेतुनैकत्वविवक्षणात्, भेदविवक्षायां च बहुवचनमिति ॥ चतुष्प्रदेशिकेऽप्येवं नवरमेकोनविंशतिर्भङ्गा,

तत्र त्रय सकलादेशा तथैव शेषेषु चतुर्षु प्रत्येकं चत्वारो विकल्पा., ते चैवं चतुर्थादिषु

त्रिषु — [illegible] सप्तमस्त्वेवम्— [illegible]

पञ्चप्रदेशिके तु द्वाविंशतिस्तत्राद्यास्त्रयस्तथैव तदुत्तरेषु च त्रिषु प्रत्येकं चत्वारो विकल्पास्तथैव, सप्तमे तु सप्त त्रिकसंयोगे किलाष्टौ भङ्गका भवन्ति तेषु च सप्तैवेह ग्राह्या एकस्तु तेषु न पतत्यसम्भवात्, इदमेवाह—'तिगसंजोगे'त्यादि तत्रैतेषां स्थापना—

[illegible]

यश्च न पतति स पुनरयम् २२२ षट्प्रदेशिके त्रयोविंशतिरिति ॥

मूलम्-परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सासए असासए ?, गोयमा ! सिय सासए सिय असासए, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सिय सासए सिय असासए ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए वन्नपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासए से तेणट्ठेणं जाव सिय सासए सिय असासए (सूत्रं २१८) ॥ परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं चरमे अचरमे ?, गोयमा !

दव्वादेसेणं नो चरिमे अचरिमे, खेत्तादेसेण सिय चरिमे सिय अचरिमे, कालादेसेणं सिय चरिमे सिय अचरिमे, भावादेसेण सिय चरिमे सिय अचरिमे ॥

— श्री भगवती सूत्र १४।४।५१२ ॥

टीका—'परमाणुपोग्गले णं'ति पुद्गल स्कन्धोऽपि स्यादत परमाणुग्रहणं 'सासए'त्ति शाश्वद्भवनात् 'शाश्वत' नित्यः अशाश्वतस्त्वनित्य 'सिय सासए'त्ति कथञ्चिच्छाश्वत, दव्वट्ठयाए'त्ति द्रव्यं—उपेक्षितपर्याय वस्तु तदेवार्थो द्रव्यार्थस्तद्भावस्तत्ता तया द्रव्यार्थतया शाश्वत स्कन्धान्तर्भावेऽपि परमाणुत्वस्याविनष्टत्वात् प्रदेशलक्षणव्यपदेशान्तरव्यपदेश्यत्वात, 'वन्नपज्जवेहिं'ति परि—सामस्त्येनावन्ति—गच्छन्ति ये ते पर्यवा विशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरं ते च वर्णादिभेदादनेकधेत्यतो विशेष्यते—वर्णस्य पर्यवा वर्णपर्यवा अतस्तै', 'असासए'त्ति विनाशी, पर्यवाणां पर्यवत्वेनैव विनश्वरत्वादिति ॥ परमाण्वधिकारादेवेदमाह— 'परमाणु' इत्यादि, 'चरमे'त्ति यः परमाणुर्यस्माद्विवक्षितभावाच्च्युतः सन पुनस्तं भाव न प्राप्स्यति स तद्भावापेक्षया चरम, एतद्विपरीतस्त्वचरम इति, तत्र 'दव्वादेसेण'ति आदेश — प्रकारो द्रव्यरूप आदेशो द्रव्यादेशस्तेन नो चरम', स हि द्रव्यतः परमाणुत्वाच्च्युत सघातमवाप्यापि ततश्च्युत परमाणुत्वलक्षणं

चरमत्वमवाप्स्यतीति । 'खेत्तादेसेण' त्ति क्षेत्रविशेषितत्वलक्षणप्रकारेण 'स्यात्' कदाचिच्चरमः, कथम्? यत्र क्षेत्रे केवली समुद्घातं गतस्तत्र क्षेत्रे यः परमाण्ववगाढोऽसौ तत्र क्षेत्रे तेन केवलिना समुद्घातगतेन विशेषितो न कदाचनाप्यवगाहं लप्स्यते केवलिनो निर्वाणगमनादित्येवं क्षेत्रतश्चरमोऽसाविति निर्विशेषणक्षेत्रापेक्षया त्वचरमः, तत्क्षेत्रावगाहस्य तेन लप्स्यमानत्वादिति । 'कालादेसेणं' ति कालविशेषितत्वलक्षणप्रकारेण स्याच्चरमेत्ति कथञ्चिच्चरमः, कथं? यत्र काले पूर्वाह्णादौ केवलिना समुद्घातः कृतस्तत्रैव यः परमाणुतया संवृत्तः स च तं कालविशेषं केवलिसमुद्घातविशेषितं न कदाचनापि प्राप्स्यति तस्य केवलिनः सिद्धिगमनेन पुनः समुद्घाताभावादिति तदपेक्षया कालतश्चरमोऽसाविति, निर्विशेषणकालापेक्षया त्वचरम इति । 'भावादेसेणं' ति भावो वर्णादिविशेषः तद्विशेषलक्षणप्रकारेण 'स्याच्चरमः' यथञ्चिच्चरमः, कथं? विवक्षितकेवलिसमुद्घातावसरे यः पुद्गलो वर्णादिभावविशेषं परिणतः स विवक्षितकेवलिसमुद्घातविशेषितवर्णपरिणामापेक्षया चरमो यस्मात्तत्केवलिनिर्वाणे पुनस्तं परिणामसौ न प्राप्स्यति, इदञ्च व्याख्यानं चूर्णिकारमतमुपजीव्य कृतमिति ॥

सूत्रम्-परमाणुपोग्गले णं भंते! कतिवन्ने जाव कतिफासे पन्नत्ते? गोयमा! एगवन्ने एगगंधे एगरसे दुफासे

पन्नत्ते ॥ दुपएसिए णं भंते ! खंधे कतिवन्ने पुच्छा गोयमा ! सिय एगवन्ने सिय दुवन्ने सिय एगगधे सिय दुगधे सिय एगरसे सिय दुरसे सिय दुफासे सिय तिफासे सिय चउफासे पन्नत्ते, एव तिपएसिएवि, नवर सिय एगवन्ने सिय दुवन्ने सिय तिवन्ने, एवं रसेसुवि, सेसं जहा दुपएसियस्स, एवं चउपएसिएवि नवरं सिय एगवन्ने जाव सिय चउवन्ने, एव रसेसुवि, सेसं तं चेव, एवं पचपएसिएवि, नवरं सिय एगवन्ने जाव सिय पंचवन्ने, एवं रसेसुवि गधफासा तहेव, जहा पचपएसिओ जाव असंखेज्जपएसिओ ॥ सुहुमपरिणए णं भंते ! अणंतपएसिए खधे कतिवन्ने जहा पंचपएसिए तहेव निरवसेसं, बादरपरिणए णं भंते ! अणंतपएसिए खधे कतिवन्ने पुच्छा, गोयमा ! सिय एगवन्ने जाव सिय पंचवन्ने सिय एगगंधे सिय दुगंधे सिय एगरसे जाव सिय पंचरसे सिय चउफासे जाव सिय अट्ठफासे प० ॥ सेव भंते ! २त्ति ।

—श्री भगवती सूत्र १८।६।६३१॥

टीका 'परमाणुपोग्गले णं'मित्यादि, इह च वर्णगन्धरसेषु पञ्च द्वौ पञ्च च विकल्पा 'दुफासे'त्ति स्निग्धरूक्षशीतोष्णस्पर्शा-

नामन्यतराविरुद्धस्पर्शद्वययुक्त इत्यर्थ इहच चत्वारो विकल्पा शीतस्निग्धयो शीतरूक्षयो उष्णस्निग्धयो उष्णरूक्षयोश्च सम्बन्धादिति ॥ 'दुपएसिए ण'मित्यादि, 'सिय एगवन्ने'त्ति द्वयोरपि प्रदेशयोरेकवर्णत्वात्, इह च पञ्च विकल्पा, 'सिय दुवन्ने'त्ति प्रतिप्रदेश वर्णान्तरभावात, इह च दश विकल्पा, एव गन्धादिष्वपि, 'सिय दुफासे'त्ति प्रदेशद्वयस्यापि शीतस्निग्धत्वादिभावात्, इहापि त एव चत्वारो विकल्पा 'सिय तिफासे'त्ति इह चत्वारो विकल्पास्तत्र प्रदेशद्वयस्यापि शीतभावात्, एकस्य च तत्र स्निग्धभावात् द्वितीयस्य च रूक्षभावादेक, 'एवम अनेनैव न्यायेन प्रदेशद्वयस्योष्णभावाद्द्वितीय, तथा प्रदेशद्वयस्यापि स्निग्धभावात् तत्र चैकस्य शीतभावादेकस्य चोष्णभावात्तृतीय, 'एवम्' अनेनैव न्यायेन प्रदेशद्वयस्य रूक्षभावाच्चतुर्थ इति, 'सिय चउफासे'त्ति इह 'देसे सिए देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे'त्ति वक्ष्यमाणवचनादेक, एव त्रिप्रदेशादिष्वपि स्वयमभ्यूह्यम् ॥ 'सुहुमपरिणए ण'मित्यादि, अनन्तप्रदेशिको बादरपरिणामोऽपि स्कन्धो भवति द्व्यणुकादिस्तु सूक्ष्मपरिणाम एवेत्यनन्तप्रदेशिकस्कन्ध सूक्ष्मपरिणामत्वेन विशेषितस्तत्राद्याश्चत्वार स्पर्शा सूक्ष्मेषु बादरेषु चानन्तप्रदेशिकस्कन्धेषु भवन्ति, मृदुकठिनगुरुलघुस्पर्शास्तु बादरेष्वेवेति ॥

सूत्रम्-सरिसवा ते भंते! किं भक्खेया अभक्खेया ?,

सोमिला ! सरिसवा भक्खेयावि अभक्खेयावि, से केणट्ठे० सरिसवा मे भक्खेयावि अभक्खेयावि ?, से नूणं ते सोमिला ! बंभन्नएसु नएसु दुविहा सरिसवा पन्नत्ता, तंजहा--मित्तसरिसवा य धन्नसरिसवा य, तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवा ते तिविहा प०, तं०—सहजायया सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया, ते ण समणाण निग्गथाणं अभक्खेया, तत्थ ण जे ते धन्नसरिसवा ते दुविहा प० तं०—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य तत्थण जे ते असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे से सत्थपरिणया ते दुविहा प० तं०—एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य, तत्थ ण जे ते अणेसणिज्जा ते समणाण निग्गथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा प० त—जाइया य अजाइया य, तत्थ णं जे ते अजाइया ते ण समणाण निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते जातिया ते दुविहा प०, तं०—लद्धा य अलद्धा य, तत्थण ज ते अलद्धा तेण समणाण निग्गथाण अभक्खेया, तत्थ ण जे ते लद्धा तेणं समणाणं निग्गथाणं भक्खेया, से तेणट्ठेणं सोमिला ! एवं

वुच्चइ जाव अभक्खेयावि । मासा ते भंते ! किं भक्खेया अभक्खेया ?, सोमिला ! मासा मे भक्खेयावि अभक्खेयावि, से केणट्ठ ण जाव अभक्खेयावि, से नूणं ते सोमिला ! बभन्नएसु नएसु दुविहा मासा पं०, त०–दव्वमासा य कालमामा च, तत्थ णं जे ते कालमासा तेण सावणादीया आसाढपज्जवसाणा दुवालस त०–सावणे भद्दवए आसोए कत्तिए मग्गमिरे पोसे माहे फागुणे चित्ते वइसाहे जेट्ठामूले आसाढे, तेण ममणाणं निग्गथाणं अभक्खेया, तत्थ णं जे ते दव्वभासा ते दुविहा प० त० अत्थमासा य धण्णमासा य, तत्थ णं जे ते अत्थमासा ते दुविहा प० तं०–सुवन्नमासा य रुप्पमासा य, ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया, तत्थ ण जे ते धन्नमासा ते दुविहा प० तं०–सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य, एव जहा–धन्नसरिसवा जाव से तेणट्ठेण जाव अभक्खेयावि । कुलत्था ते भते ! किं भक्खेया अभक्खेया ?, सोमिला ! कुलत्था भक्खेयावि अभक्खेयावि से केणट्ठेणं जाव अभक्खेयावि ?, से नूणं सोमिला ! ते बभन्नएसु नएसु दुविहा कुलत्था प०, तं०–इत्थिकुलत्था य

धन्नकुलत्था य, तत्थ णं जे ते इत्थिकुलत्था ते तिविहा प०, तंजहा-कुलकन्नयाइ वा कुलवहूयाति वा कुलमाउयाइ वा, तेणं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया, तत्थणं जे ते धन्नकुलत्था एवं जहा धन्नसरिसवा से तेणटठेणं जाव अभक्खेयावि ॥

—श्री भगवती सूत्र १८.१०।६४६॥

टीका- सरिसव'त्ति एकत्र प्राकृतशैल्या सदृशवयस — समानवयस अन्यत्र सर्पपा —सिद्धार्थका, 'दव्वमास'त्ति द्रव्यरूपा मासा 'कालमास'त्ति कालरूपा मासा, 'कुलत्थ'त्ति एकत्र कुले तिष्ठन्तीति कुलस्था —कुलाङ्गना., अन्यत्र कुलत्था — धान्यविशेषा सरिसवादि—पदप्रश्नश्च छलग्रहणेनोपहासार्थं कृत इति ॥

मूलम्-एगे भव दुवे भव अक्खए भवं अव्वए भव अवट्ठिए भव अणेगभूयभावभविए भव ?, सोमिला! एगेवि अहं जाव अणेगभूयभावभविएवि अहं से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जाव भवियवि अहं ?, सोमिला! दव्वटठयाय एगे अहं नाणदंसणटठयाए दुविहे अहं पएसटठयाए अक्खएवि अहं अव्वएवि अहं अवट्ठिएवि अहं उवयोगट्ठयाए अणेगभूयभावभविएवि अहं से तेणट्ठेणं जाव भविएवि अहं ॥

—श्री भगवती सूत्र १८।१०।६४७॥

टीका—'एगे भव'मित्यादि, एको भवानित्येकत्वाभ्युपगमे भगवताऽऽत्मनः कृते श्रोत्रादिविज्ञानानामवयवानां चात्मनोऽनेकत्त उपलब्धित एकत्वं दूषयिष्यामीति बुद्ध्या पर्यनुयोगः सोमिलभट्टेन कृत, द्वौ भवानिति च द्वित्वाभ्युपगमेऽहमित्येकत्वविशिष्टस्यार्थस्य द्वित्वविरोधेन द्वित्वं दूषयिष्यामीति बुद्ध्या पर्यनुयोगो विहित, 'अक्खए भव'मित्यादिना च पदत्रयेण नित्यात्मपक्ष पर्यनुयुक्त, 'अणेगभूयभावभविए भव'त्ति अनेके भूता—अतीता भावा—सत्तापरिणामा भव्याश्च—भाविनो यस्य स तथा, अनेन चातीतभविष्यत्सत्ताप्रश्नेनानित्यतापक्ष पर्यनुयुक्त, एकतरपरिग्रहे तस्यैव दूषणायेति, तत्र च भगवता स्याद्वादस्य निखिलदोषगोचरातिक्रान्तत्वात्तमवलम्ब्योत्तरमदायि—'एगोवि अह'मित्यादि कथमित्येतत्? इत्यत आह—'दव्वट्ठयाए एगोऽह'ति जीवद्रव्यस्यैकत्वेनैकोऽहं न तु प्रदेशार्थतया, तथा हि अनेकत्वान्ममेत्यवयवादीनामनेकत्वोपलम्भो न बाधक, तथा कञ्चित्स्वभावमाश्रित्यैकत्वसंख्याविशिष्टस्यापि पदार्थस्य स्वभावान्तरद्वयापेक्षया द्वित्वमपि न विरुद्धमित्यत उक्त—'नाणदंसणट्ठयाए दुवेवि अह'ति, न चैकस्य स्वभावभेदो न दृश्यते, एको हि देवदत्तादि पुरुष एकदैव तत्तदपेक्षया पितृत्वपुत्रत्वभ्रातृत्वभ्रातृव्यत्वादीननेकान् स्वभावाल्लभत इति, तथा प्रदेशार्थतयाऽसंख्येयप्रदेशतामाश्रित्याक्षतोऽप्यहं सर्वथा प्रदेशानां क्षयाभावात्, तथाऽव्य-

योऽप्यह कतिपयानामपि च व्ययाभावात्, किमुक्तं भवति ?—अवस्थितोऽप्यहं—नित्योऽप्यहं असंख्येयप्रदेशिता हि न कदाचनापि व्यपैति अतो नित्यताऽभ्युपगमेऽपि न दोष., तथा 'उवओगट्ठयाए'ति विविधविषयानुपयोगानाश्रित्यानेकभूतभावभविकोऽप्यहम्, अतीतानागतयोर्हि कालयोरनेकविषयबोधानामात्मनः कथञ्चिदभिन्नानां भूतत्वाद् भावित्वाच्चेत्यनित्यपक्षोऽपि न दोषायेति ॥

मूलम्—केवतिया णं भंते ! असुरकुमारभवणावाससयसहस्सा प० ?, गोयमा ! चउसट्ठि असुरकुमारभवणावाससयसहस्सा प०, ते णं भंते ! किंमया प० ?, गोयमा ! सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा, तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति सासया णं ते भवणा दव्वट्ठयाए वन्नपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासया, एवं जाव थणियकुमारावासा, केवतियाणं भंते ! वाणमंतरभोमेज्जनगरावाससयसहस्सा प०, ते णं भंते ! किंमया प० ?, सेसं तं चेव, केवतियाणं भंते ! जोइसियविमाणावाससयसहस्सा ? पुच्छा, गोयमा ! असंखेज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा प०. ते णं भंते ! किंमया प० ?,

गोयमा! सव्वफलिहामया अच्छा, सेसं तं चेव, सोहम्मे णं भंते! कप्पे केवतिया विमाणावास-सयसहस्सा प० ?, गोयमा! बत्तीसं विमाणावास-सयसहस्सा, ते णं भंते! किंमया प० ?, गोयमा! सव्वरयणामया अच्छा सेसं तं चेव जाव अनुत्तर-विमाणा, नवरं जाणेयव्वा जत्थ जत्तिया भवणा विमाणा वा। सेवं भंते! २ त्ति ॥

—श्री भगवती सूत्र १६।७।६५८॥

टीका—'केवइया णं'मित्यादि, 'भोमेज्ज नगर'त्ति भूमे-रन्तरभवानि भौमेयकानि तानि च तानि नगराणि चेति विग्रहः सव्वफालिहामय'त्ति सर्वस्फटिकमया ॥

मूलम्—जीवा णं भंते! पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु ?, समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु २ ?, विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठ-विंसु ३ ?, विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठ-विंसु ४ ?, गोयमा! अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु जाव अत्थेगइया विसमायं पट्ठ-विंसु विसमायं निट्ठविंसु से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ अत्थेगइया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठ-विंसु ? तं चेव, गोयमा! जीवा चउव्विहा पन्नत्ता,

तंजहा--अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा १ अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा २ अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा ३ अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा ४, तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु, तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा, ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु, तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा ते णं पाव कम्मं विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु, तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा ते णं पाव कम्मं विसमायं पट्ठविंसु विसमायं णिट्ठविंसु, से तेणट्ठेणं गोयमा! तं चेव ॥

—श्री भगवती सूत्र २६।१।८२२॥

टीका—'जीवा णं भंते! पाव'मित्यादि, 'समायं'ति समकं बहवो जीवा युगपदित्यर्थः 'पट्ठविंसु'त्ति प्रस्थापितवन्त—प्रथमतया वेदयितुमारब्धवन्त, तथा समकमेव 'निट्ठविंसु'त्ति 'निष्ठापितवन्त' निष्ठां नीतवन्त. इत्येक, तथा समकं प्रस्थापितवन्त 'विसमं'ति विषमं यथा भवति विषमतयेत्यर्थ, निष्ठापितवन्त इति द्वितीय, एवमन्यौ द्वौ। 'अत्थेगइया समाउया'इत्यादि, चतुर्भङ्गी, तत्र 'समाउय'त्ति समायुष उदयापेक्षया समकालो-

युष्कोदया इत्यर्थः 'समोववन्नग'त्ति विवक्षितायुष क्षये समकमेव भवान्तेर उपपन्ना समोपपन्नका, ये चैवंविधास्ते समकमेव प्रस्थापितवन्त—समकमेव निष्ठापितवन्त. नन्वायुःकर्मैवाश्रित्यैवमुपपन्न भवति न तु पापं कर्म, तद्धि नायुष्कोदयापेक्षं प्रस्थाप्यते चेति, नैव, यतो भवापेक्ष कर्मणामुदय क्षयश्चेष्यते. उक्तञ्च—''उदयक्खयक्खवओवसमे'त्यादि अत एवाह—'तत्थणं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पाव कम्म समाय पट्ठविसु समायं निट्ठविंसु'त्ति प्रथम, तथा 'तत्थ ण जे ते समाउया विसमोववन्ना'त्ति समकालायुष्कोदया विषमतया परभवोत्पन्ना मरणकालवैषम्यात् 'ते समाय पट्ठविंसु' त्ति आयुष्कविशेषोदयसम्पाद्यत्वात्पापकर्मवेदनविशेषस्य 'विसमायं निट्ठविंसु'त्ति मरणवैषम्येन पापकर्मवेदनविशेषस्य विषमतया निष्ठासम्भवादिति द्वितीय, तथा 'विसमाउया समोववन्नग'त्ति विषमकालायुष्कोदय समकालभवान्तरोत्पतय 'ते ण पाव कम्म विसमायं पट्ठविसु समायं निट्ठविंसु'त्ति तृतीय, चतुर्थ सुज्ञात एवेति, इह चैतान भङ्गकान प्राक्तनशतभङ्गकांश्चाश्रित्य वृद्धैरुक्तम्—"पट्ठवणमाइ किह्णु हु समाउ उववन्नएसु चउभगो। किह व समज्जणमाग गमणिज्जा अत्थओ भंगा ? ॥१॥ पट्ठवणमाए भगा पुच्छाभंगाणलोमओ वच्चा।" यथा पृच्छाभगा समकप्रस्थापनादयो न वध्यन्ते तथेह समायुष्कादय अन्यत्रान्यथा व्याख्याता अपि व्याख्येया

इत्यर्थ । "कम्मसमज्जणसए बाहुल्लाओ समाउज्जा ॥२॥" [प्रस्थापनशते समायुरुत्पन्नेषु चतुर्भङ्गी कथं नु कथं वा समर्जनशते भङ्गा अर्थतो गम्या. ? ॥१॥ प्रस्थापनशते भङ्गानां पृच्छा भङ्गानुलोम्यतो वाच्या। कर्मसमर्जनशते बाहुल्यात् समायोजयेत् ॥ १ ॥] इति ॥

श्री ज्ञाता सूत्र

हे शुक ! अस्माकं धर्मः स्याद्वादात्मकः सप्तनयाश्रितो वर्तते, अपरे धर्माः प्रत्येकनयाश्रिताः अत सप्तनयानां स्वरूपं शृणु तथा चोक्तमागमे—'कइविहा णया पण्णत्ता, गोयमा ? सत्तमूलनया पण्णत्ता तं० जहा—णेगमे १ संगहे २ ववहारे ३ उज्जुसुत्ते ४ सद्दे ५ समभिरूढे ६ एवंभूत ७ इति ॥ नैगम इति न एकं नैकं प्रभूतानीत्यर्थः, नैकैर्मानैर्महासत्व सामान्यविशेष-ज्ञानैर्मिमीते मिनोति इति वा नैकमसामान्यविशेपो नयरूपज्ञानै-र्वस्तु मन्यते पण्ठमेकभेदेन न मन्यते इत्यर्थ, न विद्यते एको गमो मार्गः सामान्यलक्षणो विशेपलक्षणो वा यस्य स नैगमिकः एव नयः सम्यग्दृष्टिवत् सामान्यविशेपाभ्यां वस्तु आनयति तस्मादेपो नयः सम्यग्दृष्टिनो भवति इति ॥१॥ तथा संग्रह इति भेदानां संग्रहः संगृह्णाति भेदान् वा संग्रह, स नयः समुच्चयेन

वस्तु आनयति, यथा कश्चिद् वनं दृष्ट्वा वदत्यग्रे वनमस्ति परं विशेषण न वक्ति, पशुपक्षितटाकाकीर्णं वन वर्तते इति न वदति, स कथयति विशेपस्तु सामान्यमध्य एवास्ति इति ॥४॥ व्यवहरणं व्यवहार, येन व्यह्रियते स व्यवहार. स तु विशेषवस्तु मन्यते, स च कथयति सामान्य विशेषाद् भिन्नं न वर्तते, केवलं सामान्यत्वेन लोकव्यवहारो न प्रवर्तते यथा भ्रमरादौ सामान्यत्वेन पंचवर्णाः सन्ति, परं कृष्णवर्णस्य बहुतरत्वेन विशेषेण, येन लोकव्यवहारेण भ्रमर कृष्ण एव निगद्यते इति, पुनर्बाह्यस्वरूप दृष्ट्वा भेद विवेक्ति, ये वाह्यदृष्ट्या गुणान् पश्यन्ति तानेव मन्यते नान्तरङ्गत्वेन, एतावता व्यवहारनये आचारक्रिया मुख्या वर्तते अन्तरङ्गपरिणामोपयोगो नास्ति, यतो नैगमसङ्ग्रहयोर्ज्ञानात्मध्यानस्य परिणमन, तत्र क्रिया मुख्यास्ति व्यवहारनयेन। जीवव्यवस्था नैकधा वर्तते, तत्रनैगमसग्रहाभ्यां सर्वजीवसत्ता एकरूपैव, परं व्यवहारेण जीवो द्विविध —सिद्ध १ संसारी च, तत्र संसारीजीवो द्विविध, अयोगी चतुर्दशगुणस्थानवर्ती शैलावस्थाया वर्तमानो जीव १, सयोगी च २, तत्र सयोगी द्विविध —त्रयोदशगुणस्थानवर्ती केवली—छद्मस्थश्च, छद्मस्थो द्विविध क्षीणमोहद्वादशगुणस्थानवर्ती मोहनीयकर्म क्षपयति स जीव १, द्वितीय उपशान्तमोहश्च २, उपशान्तमोहस्य द्वौ भेदौ, अकषायी एकादशगुणस्थानवर्ती जीव १ सकषायी च, सकषायिणो द्वौ भेदौ. एकः सूक्ष्मसकषायिदशमगुणस्थानस्थ १, बादरकषायी, बादरकषायी द्विविध श्रेणिप्रतिपन्न श्रेणि-

र्जितश्च श्रेणिवर्जितस्य द्वौ भेदौ अप्रमत्त प्रमत्तश्च, प्रमत्तस्य द्वौ भेदौ, सर्वविरति १, देशविरतिश्च २, देशविरतिर्द्विविध —विरतिपरिणाम १ अविरतिपरिणामश्च २, तत्राविरतिर्द्विविध —अविरति-सम्यकत्वी १ मिथ्यात्वी च २ मिथ्यात्विनो द्वौ भेदौ—भव्य १ अभव्यश्च २, भव्यो द्विविध —ग्रन्थीभेदी १ ग्रन्थ्यभेदी च, एवं याद्दशो जीवो दृश्यते त ताद्दशमेव मन्यते स व्यवहारनय ॥३॥ ऋजु—अवक्र श्रुत ज्ञानमस्ति यस्य स ऋजुसूत्र अथवा अतीतानागतरूपवक्रपरित्यागेन ऋजु - सरल वर्तमानकालमानयति इति ऋजुसूत्र, तत्रातीतकालस्तु विनष्ट अनागतश्चानुत्पन्नोऽस्ति दृश्यतेऽपि न आकाशपुष्पवत् कालद्वय न मन्तव्यम्, ततो वर्तमानकालेन भावित भाव सूत्रयति इति ऋजुसूत्रं परिणामग्राही वर्तते, यदा यो जीवो गृही वर्तते परमन्त परिणामै साधुतुल्यस्तदा स जीव साधुरेव कथ्यते, पुनर्यो जीव साधुवेषधारी वर्तते पर मनसि विषयाभिलाषयुक्ता परिणामा वर्तन्ते तदा स जीवोऽविरतिमानी च ॥४॥ शप्यते-थाक्रोश्यते, उच्यते वस्तु अनेनेति शब्द तेनोपचारान्नयोऽपि शब्द एवोच्यते शब्दनयोऽपि ऋजुसूत्रनयसदृशो मन्तव्य एषोऽपि वस्तुस्वरूपग्राही ऋजुशब्दनयो यदि सदृशौ तर्हि तयो क प्रतिभेद ? उच्यते ऋजुसूत्रनयवादी सामान्यगतार्थं गृह्णाति, पर लिङ्गवचनभेद किमपि न करोति, यथा तट पुल्लिङ्ग, तटी स्त्री, तट नपुंसकं पर

ऋजुसूत्रनय. केवल तटस्यार्थं गृह्णाति लिङ्गविशेष किमपि न मानयति, शब्दनयवादी तु विशेषपदं गृह्णाति शब्दाना लिङ्गवचनानां ये भेदा सन्ति तान् विशेषत पृथक् २ गृह्णाति तथा सम्यक् प्रकारेण कार्यसाधकं शब्द मानयति यथा इन्द्रशब्दं मानयति, यथा इन्द्रशब्दस्य चत्वारो निक्षेपा नामादिभेदेन सति, पर शब्दनयवादी वदति नामेन्द्र १ स्थापनेन्द्रद्रव्येन्द्रै किमपिकार्यसिद्धिर्न भवति इति यतस्ते नामेन्द्रादय इन्द्रकार्यकरणे न समर्था यदा भावेन्द्रो भविष्यति तदा इन्दनाद् इन्द्र. इति शब्द स्वकार्यकारिष्यतीति । निक्षेपेण विचारो बहुतरोऽस्ति ग्रन्थगौरवभयान्नोलिखितम् इति ॥ ५ ॥ नानार्थेषु नानासंज्ञानामारोहणात् समभिरूढनय, एष नयो घटकुटादीन भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् भिन्नार्थगोचरान् मानयति घटपटादिशब्दवत् । तथा घटनाद् घटो विशिष्टचेष्टावान् अर्थो घट इति तथा कुट कौटिल्ये कौटिल्ययोगात् कुटो घटोऽन्य कुटोऽप्यन्य एवेति ६, तथा यस्य पदार्थस्य योऽर्थोऽस्ति तमर्थं कुर्वन्त प्रभूतं सन्त पदार्थं मानयति पुन स्वार्थस्याक्रियावेलाया त पदार्थमसन्त मानयति स एवभूतनय, यदा स्त्रीमस्तके घटश्चाटितो भवति तदा चेष्टासहितो घट चेष्टायाम् धातो चेष्टारूपार्थकरणवेलाया घट प्रति घटं कृत्वा मानयति ॥७॥ एतेषा मध्ये ये प्राक्तनास्त्रयो नया द्रव्य मन्यन्ते, तत्र नैगमव्यवहारौ अशुद्धद्रव्य मन्येते, संग्रहस्तु शुद्धद्रव्य मन्यते, तत कारणादेते त्रयो द्रव्यनया उच्यन्ते ।

उत्तरि ता त्वारो नया. पर्याय मन्यन्तेऽनमने पर्यायनया इति।
विशेषविचारस्तु सिद्धान्तान्तरादवसेय इति ॥

अथानुयोगद्वारसूत्र तः सप्तनयानां दृष्टान्तो लिख्यते—यथा केनचित् पुरुषेण कश्चित् पुरुष पृष्ट भवान् कुत्र वसति? तदा तेनाशुद्धनैगमवादिनैव उक्त लोकमध्ये वसामि पुन पृष्ट, लोकस्य त्रयो भेदा – ऊर्ध्वाधस्तिर्य लोका तत्र कस्मिल्लोके वसति। तदाऽशुद्धनैगमवादिना प्रोक्त—तिर्यग् लोके वसामि पुन पृष्ट तिर्यग् लोके असख्येया द्वीपसमुद्राश्च सन्ति तस्मात् कस्मिन द्वीपे तिष्ठति तदाऽविशुद्धनैगमवादिनोक्त, जम्बूद्वीपमध्ये तिष्ठामि, पुन पृष्ट जम्बूद्वीपे बहूनि क्षेत्राणि सन्ति, भवान कस्मिन क्षेत्रे तिष्ठति, तदा तेनाऽविशुद्धनैगमवादिनोक्तम्—भारतक्षेत्रे तिष्ठामि, पुन. पृष्ट, भ तस्य पट् खण्डानि, खण्डेषु मध्यखण्ड तस्मिन देशा नगराणि ग्रामाश्च बहव सन्ति, त्व कुत्र तिष्ठसि? तदा प्रथमनयवादी वदति—अमुकदेशे नगरे ग्रामे वा अमुक पाटके वा वसामि। तत्रैतत्पर्यन्त नैगमनयो ज्ञेय। अथ सग्रहनयवादी वदति—स्वशरीरे वसामि। तदा व्यवहारनयवादी वक्ति—स्वसस्तारके वसामि। ऋजुसूत्रवादी वदति स्वस्वभावे तिष्ठामि। समभिरूढवादिना प्रोक्त स्वगुणेषु तिष्ठामि, एवभूतनयवादिना प्रोक्तम्—ज्ञानदर्शनगुणेषु वसामि। इति दृष्टान्त सर्वपदार्थेषु ज्ञेय इति ॥

अथ सप्तनयैर्धर्म दर्श्यते— प्रथमनैगमवादी वदति सर्वे धर्मा

सन्ति, येन कारणेन सर्वे धर्माः कथयन्ति, अयं नयोऽशरूपो धर्मनाम कथयति, तदा संग्रहनय उवदत्—यैर्वृद्धपुरुषैराचरितं तद्धर्मः कथ्यते, अनाचारस्त्यक्त्वा परं कुलाचारो धर्मः कथितः—तदा व्यवहारनयेन प्रोक्तम्—यः सुखहेतुः स धर्मः अर्थात्—पुण्यकर्मकारणो धर्मः मानितस्तदा ऋजुसूत्रनयेन प्रोक्तम्—यः उपयोगसत्ववैराग्यरूपपरिणामः स धर्मः कथ्यते; अस्मिन्नये यथा प्रवृत्तिकरस्य परिणामप्रमुखाः सर्वे धर्माः कथिताः ते मिथ्यात्विनोऽपि भवन्ति, तदा शब्दनयोऽवदत्—यः सम्यक्त्वः स एव धर्मस्य मूलं सम्यक्त्वं, तदा समभिरूढनयो वदति—यो जीवाजीवादीन् पदार्थान् जानाति जीवसत्तां ध्यायति, अजीवस्य त्यागं करोति, ईदृशो ज्ञानदर्शनचरित्राणां शुद्धनिश्चयपरिणामः स धर्मः। अस्मिन् नये साधकसिद्धपरिणामास्ते धर्मत्वेन गृहीताः, तदा एवंभूतनयो वक्ति—शुक्लध्यानरूपातीतपरिणामैः क्षपकश्रेण्यां कर्मक्षयहेतुः स धर्मः, यो जीवस्यमूलस्वभावो धर्मो मोक्षरूपं कार्यं करोति, एवं सप्तनयैर्धर्मः कथ्यते। सप्तनयानामेकत्रमीलनात् सम्यक्त्वं वर्तते, सप्तनयग्राही सम्यक्त्वं उच्यते, य एकनयग्राही स मिथ्यादृष्टिरुच्यते, एवं सप्तनयैर्यत् सिद्धं वचनं तत प्रमाणमस्ति। सप्तनयानां मध्ये यः कोऽप्येक नयमुत्थाप्यते तस्य वचनमप्रमाणं भवेदिति ॥

श्री रायपसेणी सूत्र

मूलम्–पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया० ?, गोयमा ! सिय सासया सिय असासया, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं असासया, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं-वुच्चति–सिय सासया सिय असासया । पउमवरवेइयाणं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?, गोयमा ! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि न कयावि न भविस्सइ, भुविं च हवइ य भविस्सइ य, धुवा णिइया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेइया ।

श्री रायपसेणी सूत्र विमान वर्णन सूत्र ३४ ॥

टीका पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया' इत्यादि, पद्म-वरवेदिका'णं' मिति पूर्ववत् किं शाश्वती उताशाश्वती, आबन्त-तया सूत्रे निर्देश प्राकृतत्वात्, कि नित्या उतानित्येतिभाव, भगवानाह- गौतम ! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती, कथचिन्नित्या कथचिदनित्या इत्यर्थ, स्याच्छब्दो निपात कथंचिदित्येतदर्थ-वाची, 'से केणट्ठ णं' मित्यादि, प्रश्नसूत्र सुगम, भगवानाह-गौतम ! द्रव्यार्थतया—द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिक-नयो हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते न पर्यायान्, द्रव्यं—चान्वयि परिणामित्वात्, अन्वयित्वाच्च सकलकालभावीति भवतिद्रव्या-र्थतया शाश्वती, वर्णपर्यायैस्तत्तदन्यसमुत्पद्यमानवर्णविशेपरूपै, एव गन्धपर्यायै रसपर्यायै स्पर्शपर्यायै उपलक्षणमेतत्, तत्तदन्य-पुद्गलविचटनोच्चटनैश्च अशाश्वती, पर्यायाणा प्रतिक्षणभावितया कियत्कालभावितया विनाशित्वात्, 'से एएणट्ठेणं' मित्याद्युप-सहारवाक्य सुगम, इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमतप्रतिष्ठापनार्थ-मेवमाह—नात्यन्तासत उत्पादो नापि सतो नाश 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत ' इति वचनात्, यौ तु दृश्येते प्रति-वस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्र, यथा सर्पस्य उत्फ-णत्वविफणत्वे, तस्मात् सर्व वस्तु नित्यमिति, एव च तन्मतचि-न्तायां सगय —कि यदाविर्भाव द्रव्यार्थतया शाश्वती उत सकल-कालनेकरूपेति, तत संशयापनोदार्थं भगवन्त भूय पृच्छति—

श्री जीवाभिगम सूत्र

मूलम्—इमीसे णं भंते ! रयणाप० पु० सव्वजीवा उववरणा पुव्वा ? सव्वजीवा उववरणा ?; इमीसे णं रय० पु० सव्वजीवा उववरणापुव्वा नो चेव णं सव्वजीवा उववरणा, एव जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमा णं भंते ! रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा ? सव्वजीवेहिं विजढा ? गोयमा ! इमा णं रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा नो चेव ण सव्वजीवविजढा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमीसे णं भंते ! रयण० पु० सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा ? सव्वपोग्गला पविट्ठा ? गोयमा ! इमी से ण रयण० पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गला पविट्ठा, एवं जाव अधेसत्तमाय पुढवीए ॥ इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी सव्वपोग्गलेहिं

विजढपुव्वा ? सव्वपोग्गला विजढा ?, गोयमा ! इमा णं रयणप्पभा पु० सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गलेहिं विजढा, एवं जाव अधेसत्तमा ॥

—श्री जीवाभिगम सूत्र प्रतिपत्ति ३ सू० ७७१ ॥

टीका—'इमीसे णं भंते ! ' इत्यादि. अस्या भदन्त ! रत्नप्रभाया पृथिव्या सर्वजीवा. सामान्येन उपपन्नपूर्वा इति—उत्पन्नपूर्वा कालक्रमेण, तथा सर्वजीवा 'उपपन्ना' उत्पन्ना युगपद् ?, भगवानाह—गौतम ! अस्या रत्नप्रभाया पृथिव्या सर्वजीवा सांव्यवहारिकजीवराश्यन्तर्गता प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सामान्येन 'उपपन्नपूर्वा' उत्पन्नपूर्वा कालक्रमेण, संसारस्यानादित्वात्, न पुन सर्वजीवाः 'उपपन्ना' उत्पन्ना युगपत्, सकलजीवानामेककालं रत्नप्रभापृथिवीत्वेनोत्पादे सकलदेवनारकादि भेदाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात्, एवमेकैकस्या पृथिव्यास्तावद्वक्तव्यं यावदध सप्तम्याः ॥ 'इमा णं भंते !' इत्यादि इयं च भदन्त ! रत्नप्रभापृथिवी 'सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा' इति सर्वजीवै कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, तथा सर्वजीवैर्युगपद् 'विजढा' परित्यक्ता ?, भगवानाह—गौतम ! इयं रत्नप्रभा पृथिवी प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सर्वजीवै सांव्यवहारिक कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, न तु युगपत्परित्यक्ता, सर्वजीवै एककालपरित्यागस्यासम्भवात् तथा-

निमित्ताभावात्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदध सप्तमी पृथ्वी ॥ 'इमीसे रण' मित्यादि, अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गला लोकोदरविवरवर्त्तिन कालक्रमेण 'प्रविष्टपूर्वा' तद्भावेन परिणतपूर्वा, तथा सर्वे पुद्गला 'प्रविष्टा' एककालं तद्भावेन परिणता ?, भगवानाह—गौतम ! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्या सर्वे पुद्गला लोकवर्तिन 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वा, संसारस्यानादित्वात्, न पुनरेककाल सर्वपुद्गला 'प्रविष्टा' तद्भावेन परिणता सर्वपुद्गलानां तद्भावेन परिणतौ रत्नप्रभा-व्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्रापि पुद्गलाभावप्रसक्ते, न चैतदस्ति, तथा-जगत्स्वाभाव्यात्। एवं सर्वासु पृथिवीषु क्रमेण वक्तव्यं यावद-ध सप्तम्यां पृथिव्यामिति ॥ 'इमा णं भंते !' इत्यादि, इय भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलै कालक्रमेण 'विजढपुव्वा' इति परि-त्यक्तपूर्वा तथैव सर्वै पद्गलैरेककाले परित्यक्ता ?, भगवानाह— गौतम ! इय रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलै कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, संसारस्यानादित्वात्, न पुन सर्वपुद्गलैरेककालं परित्यक्ता, सर्व-पुद्गलैरेककालपरित्यागे तस्या सर्वथा स्वरूपाभावप्रसक्ते, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यत शाश्वतत्वात्, एतच्चानन्तरमेव वक्ष्यति। एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वाच्या यावदध सप्तमी पृथिवी ॥

मूलम्—इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं सासया असासया ?, गोयमा ! सिय सासता सिय असा-

मया ॥ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासता, वण्णपज्जवेहि गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चति–तं चेव जाव सिय असासता, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमा णं भंते ! रयणप्पभाए० कालतो केवच्चिरं होइ ?, गोयमा ! न कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सति ॥ भुविं च भवइ य भविस्सति य धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिता णिच्चा एवं जाव अधे सत्तमा ॥

—श्री जीवाभिगम मलयागिरि वृत्ति प्रति० ३ सूत्र ७८ ॥

टीका–'इमा णं भंते !' इत्यादि इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी किं शाश्वती अशाश्वती ?, भगवानाह—गौतम ! स्यात्—कथञ्चित्कस्यापि नयस्याभिप्रायेणेत्यर्थः शाश्वती, स्यात्—कथञ्चिद्-शाश्वती ॥ एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति—'से केणट्ठेणं' मित्यादि, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स च प्रश्ने, केन अर्थेन' कारणेन भदन्त ! एवमुच्यते यथा स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वतीति ?, भगवानाह—गौतम ! 'दव्वट्ठयाए' इत्यादि, द्रव्यार्थतया शाश्व-तानि तत्र द्रव्यं सर्वत्रापि सामान्यमुच्यते, द्रव्याणि—गन्धानि तानि तान पर्यायान विशेषानिति वा द्रव्यमिति व्युत्पत्तेर्द्रव्यमेवार्थः—

तात्त्विक पदार्थो यस्य न तु पर्याया स द्रव्यार्थ —द्रव्यमात्रास्तित्व-प्रतिपादको नयविशेपस्तद्भावो द्रव्यार्थता तया द्रव्यमात्रास्तित्व प्रतिपादकनयाभिप्रायेणेतियावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनयमतपर्या-लोचनायामेवंविधस्य रत्नप्रभाया पृथिव्या आकारस्य सदा भावात्, 'वर्णपर्यायै.' कृष्णादिभि 'गंधपर्यायै' सुरभ्यादिभि 'रसपर्यायै' तिक्तादिभि 'स्पर्शपर्यायै' कठिनत्वादिभि 'अशाश्वती, अनित्या, तेषा वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत्कालानन्तरं वाऽन्यथाभवनात्, अतादवस्थ्यस्य चानित्यत्वात् न चैवमपि भिन्नाधिकरणे नित्यत्वा-नित्यत्वे, द्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयोरप्यसत्त्वा-पत्ते, तथाहि—शक्यते वक्तु परपरिकल्पित द्रव्यमसत्, पर्याय-व्यतिरिक्तत्वात्, बालत्वादिपर्यायशून्यवन्ध्यासुतवत् तथा परपरि-कल्पिता: पर्याया असन्त, द्रव्यव्यतिरिक्तत्वात्, वन्ध्यासुतगत-बालत्वादिपर्यायवत्, उक्तञ्च "द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्य-वर्जिता। क कदा केन किंरूपा?, दृष्टा मानेन केन वा? ॥१॥", इति कृतं प्रसङ्गेन, विस्तरार्थिना च धर्मसंग्रहणिटीका निरूपणीया। 'से तेणट्ठे णं' मित्याद्युपसंहारमाह, सेशब्दोऽथशब्दार्थे स चात्र वाक्योपन्यासे अथ 'एतेन' अनन्तरोदितेन कारणेन गोतम! एव-मुच्यते—स्यात् शाश्वती स्याद् शाश्वती, एव प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्य यावदध सप्तमी पृथिवी, इह यद् यावत्सम्भवास्पद तच्चेत्तावन्त कालं शाश्वद्भवति तदा तदपि शाश्वतमुच्यते यथा तन्त्रान्तरेषु

'आकप्पट्ठाई पुढवी सासया' इत्यादि, तत्र संशयः—किमेषा रत्नप्रभा पृथवी सकलकालावस्थायितया शाश्वती उतान्यथा यथा तन्त्रान्तरीयैरुच्यत इति ?, तत्संदेहापनोदार्थं पृच्छति – 'इमा णं भंते' इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी कालतः 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्ना-सीत्, सदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः, अत्रापि स एव हेतुः, सदा भावादिति, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, भविष्यत्कालचिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति भावः, अपर्यवसितत्वात्। तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय संप्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—'भुविं चे' त्यादि, अभूत् भवति भविष्यति च, एवं त्रिकालभावित्वेन 'ध्रुवा' ध्रुवत्वादेव 'नियता' नियतस्वरूपा, धर्मास्तिकायादिवत् नियतत्वादेव च शाश्वती, शश्वद्भाव-प्रलयाभावात्, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पद्महदपौण्डरीकवत् द्वीपान्तरपुद्गलविचटनेऽप्यन्यतरपुद्गलोपचयसम्भा-वात् 'अक्षया' अक्षयत्वादेव च 'अव्यया' मानुषोत्तराद् बहिः समुद्र-वत्, अव्ययत्वादेव 'अवस्थिता' स्वप्रमाणे अवस्थिता, जम्बूद्वीपा-दिवत् एवं द्रव्यार्थादेशेन चिन्त्यमाना नित्या [illegible] सहिता [illegible] इन्द्रियादि [illegible] नानाविध-[illegible] इत्यादि [illegible] नारकाणां [illegible] सर्वत्र ॥

मूलम्–सासया णं ते णरगा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया एव जाव अहे सत्तमाए ॥

--श्री जीवाभिगम सूत्र प्रतिपत्ति ३।८५ ॥

टीका शाश्वता णमिती पूर्ववत् ते नरका द्रव्यार्थता तथाविधप्रतिनियतसंस्थानादिरूपतया वर्णपर्यायैर्गन्धपर्यायै स्पर्शपर्यायै पुनरशाश्वता, वर्णादीनामन्यथाऽन्यथाभवनात्, एवं प्रतिपृथिवि ताद्वक्तव्य यावदध सप्तमी पृथिवी ॥

मूलम्–'पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया असासया ? गोयमा ! सिय सासया सिय असासया ॥ से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ–सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहि रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–सिय सासता सिय असासता ॥ पउमवरवेइया णं भंते ! कालओ केवच्चिर होति ?, गोयमा ! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि न भविस्सति ॥ भुविं च भवति य भविस्सति य धुवा नियमा सासता अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेदिया'' ॥

—श्री जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ देवाधिकार उद्देश १ सू० १२५॥

टीका—पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया ? इत्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् किं शाश्वती उताशाश्वती ?, आवन्ततया सूत्रे निर्देशः प्राकृतत्वात्, किं नित्या उतानित्येति भाव, भगवानाह गौतम ! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती कथञ्चिन्नित्या कथञ्चिदनित्येत्यर्थः, स्याच्छब्दो निपातः कथञ्चिदित्येतदर्थवाची ॥ 'से केणट्ठेणं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं भगवानाह—गौतम ! 'द्रव्यार्थतया' द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिकनयो हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते न पर्यायान्, द्रव्यं चान्वयि परिणामित्वात्, अन्यथा द्रव्यत्वायोगात्, अन्वयित्वाच्च सकलकालभावीति भवति द्रव्यार्थतया शाश्वती, 'वर्णपर्यायैः' तदन्यसमुत्पद्यमानवर्णविशेषरूपैरेवं गन्धपर्यायैः रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः, लक्षणमेतत्तदन्यपुद्गलविचटनोच्चटनैश्चाशाश्वती,

पर्यायास्तिकनयमतेन पर्यायप्राधान्या

प्रतिक्षणं भावितया किंचन ।

णणट्ठे णं—मित्यादि

वादी स्वतन्त्र

सतो विनाशो,

वचनात्,

मूलम्–सासया णं ते णरगा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया एव जाव अहे सत्तमाए ॥

--श्री जीवाभिगम सूत्र प्रतिपत्ति ३।८५ ॥

टीका शाश्वता णमिती पूर्ववत् ते नरका द्रव्यार्थता तथाविधप्रतिनियतसस्थानादिरूपतया वर्णपर्यायैर्गन्धपर्यायै स्पर्शपर्यायै पुनरशाश्वता, वर्णादीनामन्यथाऽन्यथाभवनात्, एवं प्रतिपृथिवि ताद्वक्तव्यं यावदध सप्तमी पृथिवी ॥

मूलम्–'पउमवरवेइया णं भते ! किं सासया असासया ? गोयमा ! सिय सासया सिय असासया ॥ से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ–सिय सासया सिय असासया ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया वण्णपज्जवेहिं गधपज्जवेहि रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–सिय सासता सिय असासता ॥ पउमवरवेइया णं भंते ! कालओ केवच्चिर होति ?, गोयमा ! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि न भविस्सति ॥ भुविं च भवति य भविस्सति य धुवा नियमा सासता अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेदिया'' ॥

—श्री जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ देवाधिकार. उद्देश १ सू० १२५॥

टीका—पउमवरवेइया गं भंते ! किं सासया ?, इत्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् किं शाश्वती उताशाश्वती ?, आबन्ततया सूत्रे निर्देश प्राकृतत्वात्, किं नित्या उतानित्येति भाव, भगवानाह गौतम ! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वतीकथञ्चिन्नित्या कथञ्चिदनित्येत्यर्थ. स्याच्छब्दो निपात कथञ्चिदित्येतदर्थवाची ॥ 'से केणट्ठेणं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रे सुगम, भगवानाह—गौतम ! 'द्रव्यार्थतया' द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिकनयो हि द्रव्यमेव तात्विकमभिमन्यते न पर्यायान्, द्रव्य चान्वयि परिणामित्वाद्, अन्यथा द्रव्यत्वायोगाद्, अन्वयित्वाच्च सकलकालभावीति भवति द्रव्यार्थतया शाश्वती, 'वर्णपर्यायै' तदन्यसमुत्पद्यमानवर्णविशेषरूपैरेवं गन्धपर्यायै रसपर्यायै स्पर्शपर्यायै, उपलक्षणमेतत्तदन्यपुद्गलविचटनोच्चटनैश्चाशाश्वती, किमुक्त भवति ? पर्यायास्तिकनयमतेन पर्यायप्राधान्यविवक्षायामशाश्वती, पर्यायाणां प्रतिक्षण भावितया कियतकालभावितया वा विनाशित्वात्, 'से एएणट्ठेण'—मित्यादि उपसहारवाक्य सुगम, इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमतप्रतिस्थापनार्थमेवमाह—नात्यन्तासत उत्पादो नापि सतो विनाशो, 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत' इति' वचनात्, यो तु दृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरो भावमात्र यथा सर्पस्योत्फणत्वविफणत्वे, तस्मात्सर्वं वस्तु नित्यमिति ॥ एवं च तन्मतचिन्तायां सशय—किं घटादिवद्द्रव्यार्थ-

तया शाश्वती उतसकलकालमेवंरूपा इति, तत संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूय पृच्छति—'पउमवरवेइया णं' मित्यादि, पद्मवर-वेदिका णमिति पूर्ववद् 'भदन्त !' परमकल्याणयोगिन् ! 'किय-च्चिर' कियन्त काजं यावद्भवति ?, एवं रूपा कियन्तं कालमव-तिष्ठते ! इति, भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्नासीत्, सर्वदै-वासीदिति भाव अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रतिपत्तव्य, अपर्यव-सितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्व प्रतिपादयति—'भुविं चे' त्यादि, अभूच्च भवति च भविष्यति चेति, एवं त्रिकालावस्थायित्वाद् 'ध्रुवा मेर्वादिवद् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपे नियता, नियतत्वादेव च 'शाश्वती' शश्वद्भवनस्वभावा, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाह-प्रवृत्तावपि पौण्डरीकह्रद इवानेकपुद्गलविचटनेऽपि तावन्मात्रान्य-पुद्गलोच्चटनसम्भवाद् 'अक्षया' न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपा-कारपरिभ्रंशो यस्या साऽक्षया, अक्षयत्वादेव 'अव्यया' अव्यय-शब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्यसम्भवात्, अव्य-यत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वताद् बहि समुद्रवत्, एव स्वस्वप्रमाणे सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्ति-कायादिवत् ॥

श्री पन्नवणा सूत्र

सूत्रम्–जीवे ण भंते! गतिचरमेण किं चरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, नेरइए णं भते ! गति-चरमेणं किं चरमे अचरिमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे एव निरंतर जाव वेमाणिए, नेरइया ण भते। गतिचरमेण किं चरिमा अचरिमा ?, गो० ! चरिमावि अचरिमावि, एवं निरन्तरं जाव वमाणिया। नेरइए ण भते! ठितीचरमेणं किं चरमे अचरमे, ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमाणिया, नेरइयाणं भंते! ठितीचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एव निरतर जाव वेमाणिया। नेरइये ण भते! भवचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० !

सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमाणिया, नेरइया णं भंते! भवचरमेणं कि चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया। नेरइए णं भंते! भासाचरमेणं कि चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते! भासाचरमेणं किं चरमा अचरमा गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं ज व एगिंदियवज्जा, निरंतरं जाव वेमाणिया। नेरइए ण भंते! आणापाणुचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते! आणापाणुचरमेणं कि चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमा व, एवं निरंतरं ज.व वेमाणिया। नेरइए णं भते! आहारचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! मिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतर जाव वेमाणिए, नेरइया ण भंते! कि चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एव निरंतरं जाव वेमाणिया। नेरइए णं भंते! भावचरमेण कि चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतरं जाव वेमाणिया। भाव-

चमेण किं चरमा अचरमा ?, गो० !- चरमावि अचरमावि, एव निरतरं जाव वेमाणिया । नेरइए णं भंते ! वएणचरमेणं किं चरमे अचग्मे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वे· माणिए, नेरइया णं भते ! वगणचग्मेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरिमावि अचरिमावि, एवं निरतरं जाव वेमाणिया । नेरइए णं भंते ! गंध-चरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एव निरंतर जाव वेमाणिए, नेरइया णं भंते ! गंधचरमेण किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं निरंतरं जाव वेमाणिया ! नेरइए णं भंते ! रमचरमेणं किं चरमे अचरमे ?, गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए, नेरइयाणं भंते ! रसचरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि, एवं निरंतर जाव वेमाणिया । नेरइएणं भंते ! फास-चरमेणं किं चरमे अचरमे ?; गो० ! सिय चरमे सिय अचरमे, एवं निरंतरं जाव वेमाणिए नेरइयाणं भते ! फास चरमेणं किं चरमा अचरमा ?, गो० ! चरमावि अचरमावि एवं जाव वेमाणिया । संगहणि

गाहा—"गतिठिइभवे य भासा आणापाणुचरमे य बोद्धव्वा। आहारभावचरमे वण्णरसे गन्धफासे य ॥ १ ॥"

—श्री प्रज्ञापना सूत्र १०।१६० ॥

मूलम् जीवाणं भंते! किं भासगा अभासगा ?, गो० ! भासगावि अभासगावि, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जीवा भासगावि अभासगावि ?, गो० ! जीवा दुविहा—प०, त० संसारसमावण्णगा य असंसारसमावण्णगा य तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णगा ते णं सिद्धा सिद्धा णं अभासगा, तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते दुविहा—प०, तं—सेलेसीपडिवण्णगा य असेलेसीपडिवण्णगा य, तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवण्णगा, ते दुविहा—प०, तं—एगिंदिया य अणेगिंदिया य तत्थ णं जे ते एगिंदिया ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते अणेगिंदिया ते दुविहा—प०, तं—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा, से एएणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चति—जीवा भासगावि अभासगावि । नेरइया

णं भते ! किं भासगा अभासगा ?, गोयमा ! नेरइया भासगावि अभासगावि ?, से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चति–नेरइया भासगावि अभासगावि ?, गो० ! नेरइया दुविहा–पं०, त०–पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा तेणं अभासगा, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा, से एएणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चति–नेरइया भासगावि अभासगावि, एवं एगिंदियवज्जाणं निरतर भाणियव्वं ॥

—श्री प्रज्ञापना सूत्र ११।१६६ ॥

श्री जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र

मूलम्–'तीसे णं जगईए उप्पि बहुमज्झदेस भाए एत्थ णं महई एगा पउमवरवेइया पण्णत्ता, अद्धजोयण उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धनुसयाइं विक्खंभेणं जगई समिया परिक्खेवेणं सव्वरयणामई अच्छा जाव पडिरूवा। तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेवारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–वइरामया णेमा एवं जहा जीवाभिगमे जाव अट्ठो जाव धुवा णियया सासया जाव णिच्चा ॥

—श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र वक्षस्कार १२ सू० ४॥

टीका–पद्मवरवेदिकायाः शाश्वत नामधेयं प्रज्ञप्तमिति, अयमपिप्राय प्रस्तुतपुद्गलप्रचयविशेषे पद्मवरवेदिकेति शब्दस्य क्तिर्नाम निरपेक्षाऽनाद कालिना रूढि प्रवृत्तिनिमित्तमिति, पउम-

वरवेइया णं भंते,'ति पद्मवरवेदिका शाश्वती उताशाश्वती ? प्रत्ययेङ्गीर्न वा (श्री सि० ८-३-३१ इत्यनेन प्राकृत सूत्रेण ङीप्रत्ययस्यवैकल्पिकत्त्वेन आबन्ततयासूत्रे निर्देश , किं नित्या उत अनित्येतिभाव , भगवानाह—गौतम ! स्याच्छाश्वती स्यादशाश्वती, कथञ्चिद्नित्या कथञ्चिदनित्या, इत्यर्थ स्याच्छब्दोनिपात' कथञ्चिदित्येतदर्थ वाची, एतदेव सविशेष जिज्ञासु पृच्छति "से केणट्ठेण, मित्यादि" से श ब्दोऽथ शब्दार्थं सच प्रश्ने, केनार्थेन—केन कारणेन भदन्त । एवमुच्यते, यथास्याच्छाश्वती स्यादशाश्वतीति भगवानाह—गौतम द्रयार्थतया शाश्वती तत्र द्रव्य सर्वत्रान्वयि सामान्यमुच्यते, द्रवति—गच्छति तान् तान् पर्यायान् विशेषानिति वा द्रव्यमिति व्युत्पत्तो द्रव्यमेवार्थ —तात्त्विक पदार्थ प्रतिज्ञायां यस्य न तु पर्याया स द्रव्यार्थ ॥ द्रव्यमात्रास्तित्व प्रतिपादको नयविशेष तद्भावो द्रव्यार्थ तया—द्रव्यमात्रास्तित्त्व प्रतिपादक नयाभिप्रायेणेति यावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनय मत पर्यालोचनाया मुक्त रूपस्य पद्मावरवेदिकाया आकारस्य सदाभावात् ? तथा वर्णपर्यायै कृष्णादिभि गधपर्यायै सुरभ्यादिभि रसपर्यायै तिक्तादिभि स्पर्शपर्यायै कठिनत्वादिभि अशाश्वती—अनित्या तेषा वर्णादीना प्रतिक्षण कियत् कालानन्तरं वाऽन्यथा भावनात् । अतादवस्थ्यस्य चानित्यत्वात् नचैवमपिभिन्नाधि करणे नित्यत्वानित्यत्वेद्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयो-

रप्यसत्वापत्ते तथाहि शक्यते वक्तु ंपरपरिकल्पित द्रव्यमसत्, पर्या-यतिरिक्तत्वात् बालत्वादिपर्याय शून्यवन्ध्या सुतवत्, तथा परपरि कल्पिता पर्याया असतोद्रव्यव्यरिरिक्तत्वात् वन्ध्यासुतगत्बाल-त्वादि पर्यायवत्, उक्तञ्च द्रव्यंपर्यायवियुतं पर्याया द्रव्यवर्जिता' क कदा केन कि रूपा' दृष्टा मानेन केन वा ॥ १ ॥ इति कृत प्रसङ्गेन "से एगणट्ठेग'मित्याद्युपसंहार वाक्य सुगमं, इह द्रव्या-स्तिकनयवादी स्वमत प्रतिष्ठापनार्थमेवमाह— नात्यन्तासत उत्पादो नापिसतो विद्यते विनाशो वा" नासतोविद्यते भावो नाभावो विद्यते सत', इति वचनात्, यौतुदृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदा-विर्भावतिरोभावमात्रं यथा सर्पस्य उत्फणत्वविफणत्वे तस्मात् सर्ववस्तुनित्यामिति, एवञ्चतन्मतचिन्तायां संशय —किं घटादिवत् द्रव्यार्थतया शाश्वती उत् सकलकालमेवं रूपेति ? तत संशयापनो-दार्थं भगवन्तं भूय पृच्छति पउमरवेइया ण' मित्यादि, पद्मवर-वेदिका णमिति पूर्ववत् भदन्त परम कल्याणयोगिन्—कियच्चिर —कियन्त कालं यावद् भवति एवरूपा कियन्तं कालमवतिष्ठते इति भगवानाह—गौतम! न कदाचिन्नासीत् सर्वदैवासीदिति भाव अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति सर्वदैव वर्तमान काल चिन्तायां भवतीति भाव, सर्वदैव भावात् तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रति-पत्तव्यम्, अपर्यवसितत्वात्, तदेव कालत्रयचिन्तायां नास्तित्व

प्रतिषेध विधाय संप्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति "भुवि च इत्यादि अभूच्च भवति च भविष्यतिचेति एवं त्रिकालावस्थायित्वात् ध्रुवा, मेर्वादिवत् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपेतिनियता, नियतत्वादेव च शाश्वती—शश्वद्भवनस्वभावा शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गा-सिन्धुप्रवाह प्रवृत्तावपि पौण्डरीक (पद्म) ह्रद इवानेक पुद्गल विघ-टनेऽपि तावन्मात्रान्य पुद्गलोच्चटन सभवात्, अक्षया—न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्या सा अक्षयत्वादेवाऽव्यया —अव्ययशब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्य सम्भवात्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वता-द्वहिः समुद्रवत्, एवं स्वस्वप्रमाणे सदावस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥

मूलम्—जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे किं सासए असासए ?, गोयमा ! सिअ सासए सिअ असासए, से केणट्ठेणं भन्ते ! एव वुच्चइ सिअ सासए सिअ असासए ?, गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए वण्णपज्जवेहिं गंध० रस० फासपज्जवेहिं असासए, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ—सिय सासए सिअ असासए । जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे कालओकेवचिरहोइ ?, गोयमा ! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि ण भविस्सइ, भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे णिइए

सासए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे जम्बुद्दीवे दीवे पण्णत्ते इति ॥ सूत्र १७५ ॥

मूलम्—जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे किं पुढविपरिणामे आउपरिणामे जीवपरिणामे पोग्गलपरिणामे ?, गोयमा ! पुढविपरिणामेवि आउपरिणामेवि जीवपरिणामेवि पुग्गलपरिणामेवि । जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे सव्वपाणा सव्वजीवा सव्वभूआ सव्वसत्ता पुढविकाइअत्ताए आउकाइअत्ताए तेउकाइअत्ताए वाउकाइअत्ताए वणस्सइकाइअत्ताए उववण्णपुव्वा ?, गो० ! असइ अदुवा अणंतखुत्तो ॥

—श्री जम्बूद्वीप० व० ७ सूत्र १७५-१७६ ॥

टीका अथास्यैवशाश्वतभावादिक प्रश्नयन्नाह— जम्बूद्दीवेण" मित्यादि, इदञ्च यथा प्राक् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातं तथाऽत्र जम्बूद्वीप व्यपदेशेनत्रोध्यमिति, एवञ्च शाश्वता शाश्वतो घटो निरन्वयविनश्वरो दृष्टः किमसावपि तद्वत्? उत नेत्याह— जम्बूद्दीवे ण"मित्यादि, इदमपि प्राग् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातमिति । अथ किंपरिणामोऽसौद्वीप इतिपिपृच्छिषुराह—जम्बूद्दीवे ण भंते ! इत्यादिजम्बुद्वीपोभदन्त द्वीप किं पृथिवीपरिणाम, पृथिवीपिण्डमय किमप्परिणाम जलपिण्डमय, एतादृशोच स्कन्धावचित्तरज स्कन्धादिवद् जीवपरिणामावपि भवत इत्या-

शंक्याह—किं जीवपरिणाम —जीवमय घटादिरजीवपरिणामोऽपि भवती थाशंक्याह—कि पुद्गलपरिणाम —पुद्गलस्कन्धनिष्पन्नः केवलपुद्गलपिण्डमय इत्यर्थ, तेजसस्त्वेकान्तसुषमादावनुत्पन्नत्वेन एकान्तदुष्षमादौ तु विध्वस्तत्वेनजम्बुद्वीपेऽस्य तत्परिणामेऽङ्गीक्रियमाणे कादाचित्कत्वप्रसङ्ग वायोस्त्वतिचलत्वेन तत्परिणामे द्वीपस्यापि चलत्वापत्तिरिति तयो स्वत एव संदेहाविषयत्वेन न प्रश्नसूत्रे उपन्यास, भगवानाह—गौतम ! पृथिवीपरिणामोऽपि पर्वत दिमत्त्वात् अप्परिणामोऽपि नदीह्रदादिमत्त्वात्—यद्यपि स्वसमये पृथिव्यप् कायपरिणामत्वग्रहणेनैव जीवपरिणामित्वसिद्ध तथापि लोकेतयोर्जीवत्वस्याव्यवहारात् पृथग् ग्रहण वनस्पत्यादीनां-तु जीवत्व—व्यवहारः स्वपरसम्मत इति, पुद्गलपरिणामोऽपि मूर्तत्वस्य प्रत्यक्ष सिद्धत्वात्, कोऽर्थ ? जम्बुद्वीपोहि स्कन्धरूप पदार्थ सचावयवै समुदितैरेव भवति, समुदायरूपत्वात् समुदायिन इति अथयदि चाय जीवपरिणामस्तर्हि सर्वेजीवा अत्रोत्पन्नपूर्वा उतनेत्याशक्याह--"जम्बुद्वीपे ण भते" इत्यादि, जम्बुद्वीपे भदत ! द्वीपे सर्वे प्राणा द्वित्रिचतुरिन्द्रिया सर्वेजीवा—पञ्चेन्द्रियाः सर्वेभूता तरव सर्वे सत्त्वा पृथिव्यप्तेजोवायुकायिका,—अनेन च साव्यवहारिकराशिविपयकएवाय प्रश्न, अत्रादि निगोदनिर्गतानामेव प्राणजीवादिरूपविशेप पर्यायप्रतिपत्तो, पृथिवीकायिकतयाअप् कायिकतयाते उस्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पति-

कायिकतया उपपन्नपूर्वा—उत्पन्नपूर्वा ? भगवानाह—" हंत गोयमा' एवं गौतम ! यथैवप्रश्नसूत्रंतथैवप्रत्युच्चारणीयं पृथिवीकायिकतया यावत् वनस्पतिकायिकतया उपपन्नपूर्वा कालक्रमेण—संसारस्यानादित्वात्, न पुन सर्वे प्राणादयो जीवविशेषा युगपदुत्पन्ना सकलजीवानामेककालं जम्बुद्वीपेपृथिव्यादिभावेनोत्पादे सकलदेवनारकादि भेदाभावप्रसक्ते. नचैतदस्ति तथा जगत्स्वभावादिति, कियतोवारानुत्पन्ना इत्याह—असकृद्—अनेकश: अथवा अनन्तकृत्व —अनन्तवारान् संसारस्यानादित्वात ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

मूलम्–धम्माधम्मागासा, तिन्निवि एए अणाइया।
अपज्जवसिया चेव, सव्वद्धं तु वियाहिया॥ ८॥
समएवि संतइं पप्प, एवमेव विआहिए। आएसं
पप्प साईए, सपज्जवसिएवि य॥ ९॥

—श्री उत्ताराध्ययन, बृहद्वृत्ति, अध्ययन, ३६ सूत्र ८–९॥

टीका–धर्मश्चाधर्मश्चाकाशं च धर्माधर्मकाशानि त्रीण्यप्येतानि, न विद्यन्ते आदिर्येषा मत्यनादिकानि, इत्यत कालात् प्रभृत्यमूनि प्रवृत्तानीत्यसम्भवात् न पर्यवसितान्यपर्यवसितान्यनन्तानीतियावत्, न हि कुतश्चित्कालात् परतएतानि न भविष्यन्तीति सम्भव, चैवौ प्राग्वत्, तथाच 'सर्वाद्धा' सर्वाकालं, कालात्यन्त संयोगे द्वितीया 'तु' अवधारणेऽत सर्वदा स्वस्वरूपापरित्यागतो नित्यानीतियावत्, 'व्याख्यातानि कथितानि, सर्वत्र लिङ्गव्यत्यय. प्राग्वत्, समयोऽपि 'सन्ततिम्' अपरापरोत्पत्तिरूपप्रवाहात्मिकां

'प्राप्य' आश्रित्य 'एवमेव' अनाद्यपर्यवसितत्वलक्षणेनैव प्रकारेण 'व्याख्यात' प्ररूपित, पठन्ति च 'एमेव संतइ पप्प समएवि'त्ति स्पष्टम, 'आदेश' विशेष प्रतिनियतव्यक्त्यात्मकं 'प्राप्य' अङ्गीकृत्य सादिक सपर्यवसित, 'अपि' समुच्चये 'च' पुनरर्थे भिन्नक्रमश्च देश। पुन प्राप्येतियोज्य, विशेषापेक्षया ह्यभूत्वाऽय भवति भूत्वा च न भवतीति सादिनिधन उच्यत इति सूत्रद्वयार्थ ॥

मूलम्—संतइं पप्प ते ऽणाई, अप्पज्जवसिआवि अ । ठिइं पडुच्च साइआ, सपज्जवसिआवि अ ॥

- श्री उत्तराध्ययन, बृहद्वृत्ति, अध्ययन, ३६, सू० १२ ॥

टीका—'सन्ततिम्' उक्तरूपा 'प्राप्य' आश्रित्य ते' इति स्कन्धा परमाणवश्च अणाइ'त्ति अनादयोऽपर्यवसिता अपिच, नहि ते कदाचितत्प्रवाहतो न भूता न वा भविष्यन्तीति, 'स्थितीं' प्रतिनियतक्षेत्रावस्थानरूपा 'प्रतीत्य' अङ्गीकृत सादिकाः सपर्यवसिता अपि च, तदपेक्षया हि प्रथमतस्तथाऽस्थित्वं वावतिष्ठन्ते अवस्थाय च न पुनर्न तिष्ठन्तीत्यभिप्राय ॥

श्री नन्दी सूत्र

मूलम्-से कि त माइयं सपज्जवसिअ, अणाइय अपज्जवसिअ च ?, इच्चेइयं दुवालसंग गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्ठयाए साइअं सपज्जवसिअं, अवुच्छित्तिनयट्ठयाए अणाइअं अपज्जवसिअं, तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तंजहा-दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ, तत्थ दव्वओ ण सम्मसुअं एग पुरिसं पडुच्च साइअ सपज्जवसिअं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइय अपज्जवसिअं, खेत्तओ ण पच भरहाइ पचेरवयाइ पडुच्च साइअं सपज्जवसिअ, पंच महाविदेहाइ पडुच्च अणाइय अपज्जवसिअ कालओ णं उस्सप्पिणि ओसप्पिणिं च पडुच्च साइअ सपज्जवसिअ, नो उस्सप्पिणिं नो ओसप्पिणिं च पडुच्च अणाइयं अपज्जवसिअं, भावओ ण जे जया जिणपन्नत्ता भावा

आघविज्जंति पराणविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जति तया (ते) भावे पडुच्च साइअं सपज्जवसिअं, खाओवसमिअं पुण भावं पडुच्च अणाइअ अपज्जवसिअं। अहवा भवसिद्धि-यस्स सुयं साइयं सपज्जवसिअं च, अभवसिद्धियस्य सुयं अणाइयं अपज्जवसिअ (च) सव्वागासपएसग्गं सव्वागासपएसेहिं अणंतगुणिअं पज्जवक्खर निप्फ-ज्जइ, सव्वजीवाणंपि अ णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडियो, जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा, 'सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चदसूराणं' । से त साइअं सपज्जवसिअं, सेत्तं अणाइयं अपज्जवसिअ ॥

श्री नन्दी सूत्र ४३ ॥

टीका—अथ किं तत्सादि सपर्यवासितमनादि अपर्यवसितंच ? तत्र सहादिनावर्तते इतिसादि, तथा पर्यवसानंपर्यवसित, भावे क्त प्रत्यय, सहपर्यवसितेनवर्तते इति सपर्यवसित, आदिरहित-मनादि, नपर्यवसितमपर्यवसित, आचार्य आह—इत्येतत् द्वादशा-ङ्गगणिपिटक "वोच्छित्ति नयट्ठाए" इत्यादिव्यवच्छित्ति प्रतिपादन-परोनयो व्यवच्छित्तिनय पर्यायास्तिकनय इत्यर्थ तस्यभावो व्यवच्छित्तिनयार्थता तयापर्यायापेक्षयेत्यर्थ किमित्याह—सादि-

गपर्यवसितं नारकादिभव परिणत्यपेक्षया जीव इव, "अवुच्छित्ति-नयट्टयाए"ति अव्यवच्छित्ति प्रतिपादनपरोनयोऽव्यवच्छित्ति-नयार्थोद्रव्यमित्यर्थ । तद्‌ भावस्तत्तातया द्रव्यापेक्षया इत्यर्थ, किमित्याह— अनादि अपर्यवसितं त्रिकालावस्थायित्वाज्जीववद्‌ अधिकृतमेवार्थ द्रव्यक्षेत्रादिचतुष्टयमाश्रित्य प्रतिपादयति ——तत्‌ श्रुतज्ञानं समासत सक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञप्तं तद्‌यथा द्रव्यत क्षेत्रत कालत भावतश्च तत्र द्रव्यतो'ण' मितिवाक्यालंकारे सम्यक्‌श्रुतमेकंपुरुषं प्रतीत्यसादिसपर्यवसत कथमिति चेत ? उच्यते, सम्यक्त्वावाप्तौ तत प्रथमपाठतो वा सादि पुर्नमिथ्यात्वप्राप्तौ सति वा सम्यक्त्वे प्रमाद्‌भावतो महाग्लानत्वभावतो वा सुरलोकगमनसंभवतो वा विस्मृतिमुपागते केवलज्ञानोत्पात्तिभावतो वा, सर्वथा विप्रनष्टे सपर्यवसितं बहून्‌पुरुपान कालत्रयवर्तिन पुन प्रतीत्यानाद्यपर्यवसित सन्तानेन प्रवृत्तत्वात्‌ कालवत्‌ तथा क्षेत्रतो णमिति वाक्यालकारे पञ्चभरतानि पञ्चैरवतानि प्रतीत्य सादिसपर्यवसान, कथ ? उच्यते, तेपु क्षेत्रे ववसर्पिण्यां सुपमदुष्पमापर्यवसाने उत्सर्पिण्यान्तु सुपमा प्रारभे तीर्थंकरधर्मसघाना प्रथमतयोत्पत्तेःसादि, एकान्ते दुष्पमादौ च काले तदभावात्‌ सपर्यवसित, तथा महाविदेहान्‌ प्रतीत्यानाद्यपर्यवसित, तत्रप्रवाहापेक्षया तीर्थकरादीनामव्यवच्छेदात्‌, तथा कालतो ण'मिति वाक्यलकारे,

अवसर्पिणीमुत्सर्पिणीं च प्रतीत्य सादिसपर्यवसित, तथाहि अवसर्पिण्यातिसृस्वेव समासु सुषमदुष्षमादुष्मसुषमादु षमा-रूपामूत्सर्पिण्यां द्वयोः समयोः दुष्मम पुषमोसुपमदुष्माभ्रपयो-र्भवति न परत, तत सादिसपर्यवासितं, अत्रचोत्सर्पिण्यवसर्पिणी स्वरूपज्ञापनार्थं कालचक्र विशतिसागरोपम कोटा कोटीप्रमाण विनेयजनानुग्रहार्थं यथा मूलवृत्तिकृता दर्शितं तथावयमपिदर्श-याम –'चत्तारि सागरोवमकोडिकोडीउ सतईए उ। एगतसुस्समा-खलु जिणेहिं सव्वेहिंनिद्दिट्ठा ॥ १ ॥ छाया – चतस्र. सागरोपम कोटी कोट्य मतत्यातु। एकान्त सुषमा खलु जिनै सर्वैर्निर्दिष्टा ॥ १ ॥ तीएपुरिसाणमाऊ तिन्नि ज पलियाइं तह पमाणच। तिन्नेव गाउयाइं आइएभणांति समयन्नु ॥ २ ॥ छाया तस्या पुरुपाणमायु स्त्रीणिच पल्योपमानि तथा प्रमाणञ्च॥ त्रीण्यंव गव्यूतानि आदौ भणंति समयज्ञा ॥ ॥ २ ॥ उपभोगपरीभोगा जम्मंतर सुकयवीयजाया उ। कप्पतरूसमूहाओ होंति किलेस विणातेसि ॥ ३ ॥ छाया उपभोगपरीभोगा जन्मान्तर सुकृतवीजजातास्तु। कल्पतरुसमूहात् भवन्तिक्लेशंविनातेषाम ॥ ३ ॥ ते पुण दसप्पयाराकप्पतरू समणसमयकेऊहि। वीरेहिं-विनिद्दिट्ठा मणोरहा पूरगा एए ॥ ४ ॥ छाया—ते पुनर्दशप्रकारा कल्पतरव श्रमणसमयकेतुभि.। धीरैर्विनिर्दिष्टा मनोरथा पूरका एते ॥ ४ ॥ मत्तागया यभिंगा तुडिअगा दीव जोइ चित्तङ्गा। चित्तरसा मणियगा गेहागारा अणिय [गि] णाय ॥ ५ ॥

छाया—मत्ताङ्गदाश्चभृ गास्त्रटिताङ्गादीपज्योतिश्चित्राङ्गा । चित्र-रसामण्यङ्ग गृहाकारा अनग्नाश्च ॥ ५॥ मत्तंगएसु मज्जभायणाणि-भिंगेसु । तुडियगेसु य संगयतुडियाणि बहुप्पगाराणि ॥ ६ ॥ छाया – मत्ताङ्गदेपु मद्य सुखपेयं भाजनानिभृंगेषु । त्रुटितागेपुच स्वगतत्रुटितानि बहुप्रकाराणि ॥ ६ ॥ दीवसिहा जोइसनामया य निच्च करति उज्जोयं । चित्तंगेसु यमल्लं चित्तरसा भोयणट्ठाए ॥ ७ ॥ छाया—दीपशिखा ज्योतिर्नामकाश्च नित्यकुर्वन्त्युद्योतम् । चित्रागेपु च माल्यचित्ररसाभोजनार्थाय ॥ ७ ॥ मणियंगेसु य भूसणवराणि भवणाणि भवणरुक्खेसु । आइण्णे [अणिगिणे] सु य इच्छियवत्थाणि बहुप्पगाराणि ॥ ८ ॥ छाया--मण्यंगेपुच-भूषणवराणि भवनानि भवनवृक्षेपु । आकीर्णेपु चेप्सितानि च [प्राथितानि] वस्त्राणि बहुप्रकाराणि ॥ ८ ॥ एएसु य अन्नेसु य नरनारिगणाण ताणमुवभोगा भवियपुणब्भवरहिया इय सव्वण्णू जिणा विंति ॥ ९ ॥ छाया—एतेपुचान्येपु च नरनारी गणाना तेषामुपभोगा । भाविपुनर्भवरहिता इति सर्वज्ञाजिना ब्रुवते ॥ ९ ॥ तोतिण्णि सागरोवमकोडाकोडीउवीयरागेहिं । सुसमत्ति समक्खाया पवाहरूवेण धीरेहिं ॥ १० ॥ छाया—तत-स्तिस्त्र सागरोपमकोटीकोटीमाना वीतरागैः । सुषमेतिसमाख्याता प्रवाहरूपेणधीरै ॥ १० ॥ तोए पुरिसाणमाउं दोन्नि उ पलियाइंतह पमाणंच । दो चेव गाउयाइ आइण्ण भणंति समयन्नु ॥ ११ ॥

छाया—तस्यां पुरुषाणामायु द्वेतु पल्योपमे तथा प्रमाणं च। द्वे एव गव्यूते आदौभणति ससमयज्ञाः ॥ ११ ॥ उवभोगपरिभोगा तेसिपि य कप्पपायवेहितो । होंति किलेसेण विनापायं पुण्णाणुभावेण ॥ १२ ॥ छाया—उपभोगपरिभोगास्तेषामपि च कल्प पादपेभ्य । भवन्तिक्लेशेन विना प्राय पुण्यानुभावेन ॥ १२ ॥ तो सुसमदुस्समाए पवाहरूवेण कोडिकोडीओ । अयराण दोत्रि सिद्धाजिणेहि जियरागदोसेहिं ॥ १३ ॥ छाया—तदासुषमदुष्षमायां प्रवाहरूपेण कोटीकोट्यौ ॥ अतरयोर्द्वे शिष्टे जिनैर्जितरागद्वेषै ॥ १३ ॥ तीए पुरिसाणमाउं एग पलिअ तहा पमाणंच। एगच गाउय तीए आईए भणंति समयन्नु ॥१४॥ छाया—तस्या पुरुषाणा आयुरेकं पल्योपम तथा प्रमाण च एक च गव्यूतं तस्यां पुरुषाणा आदौभणंति समयज्ञा ।१४॥ उवभोगा तेसिंपि य कप्पपायवेहितो। होंति किलेसणाविणा नवर पुण्णाणुभावेणं ॥ १५ ॥ छाया उपभोगपरिभोगा स्तेषामपि च कल्पपादपेभ्य । भवन्तिक्लेशेनविना नवरं पुण्यानुभावेन ॥ १५ ॥ सूसमावसेसे पढमजिणो धम्मनायगो भयव । उप्पणो सुहपुण्णो सिप्पकला-दंसओ—उसभो ॥ १६ ॥ छाया—सुषमदुष्षमावशेषे प्रथम जिना धर्मनायकोभगवान । उत्पन्न पूर्णशुभ शिल्पकलादर्शकोवृषभ ॥ १६ ॥ तो दुस्समसुस्समुणा बायालीसाइ वरिससहस्सहिं । सागर-कोडाकोडीएमेवजिणेहिं पण्णत्ता ॥ १७ ॥ छाया—तत दुष्षम-सुषमा ऊना द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्त्रै । सागरोपमकोटीकोटी

एवमेवजिनै प्रज्ञाप्ता ॥ १७ ॥ तीएपुरिसाणमाउं पुव्वपमाणेण तह पमाणं च । वणुसंखा निद्दिट्ठं विसेस सुत्ताओ नायव्वं ॥ १८ ॥ छाया—तस्यां पुरुषाणामायु पूर्वप्रमाणेण तथा प्रमाणं च धनु सख्यया निर्दिष्ट विशेष सूत्रात् ज्ञातव्य ॥ १८ ॥ उव भोगपरीभोगा पवरोसहिमाइएहिंविन्नेया । जिणचक्किवासुदेवा सव्वेऽवि इमाइ वालिसा । १८ ॥ छाया— उपभोगपरीभोगा प्रवरौषध्यादिभिर्विज्ञेया । जिनचक्रिवासुदेवा सर्वेऽप्यस्यां व्यतिक्रान्ता ॥ १९ ॥ इगवीससहस्साइ वासाण दूसमा इमीएउ । जीवियमाणुवभोगाइयाइ हीसति हायंति ॥ २० ॥ छाया—एकविंशति सहस्राणिवर्षाणादुष्षमास्यां तु ॥ जीवितमानोपभोगादिकानि हृश्यन्तेहीयमानानि । एत्तो य अइदुहयरा जीवपमाणाइएहिं निद्दिट्ठा । छट्ठ समत्ति घोरा वाससहस्साइ इगवीसा ॥ २१ ॥ छा० इतश्चातिदुःखतरा जीवित प्रमाणादिभिर्निर्दिष्टा । अतिदुष्षमति (माऽति) घोरा वर्षसहस्राणि एकविंशति ॥ २१ ॥ ओसप्पणीए एसोकालविभागो जिणेहिं निद्दिट्ठो । एसो चिय पडिलोमो विन्नेओ उस्सप्पिणीएऽवि ॥ २२ ॥ छा०—अवसर्पिण्यामेष कालविभागोजिनैर्निर्दिष्ट । एष एव प्रतिलोमो विज्ञेय उत्सर्पिण्यामपि ॥ २२ ॥ एयम्मि कालचक्के सिस्सजणाणुग्गहट्ठि (ट्ठ) या भणिए वित्थरेण सरूवो विन्नेस सुत्ताओ नायव्वो ॥ २३ ॥ छा० एतत्कालचक्रशिष्यजनानुग्रहार्थंमभिहितम् ।

संक्षेपेण महार्थोविशेष सूत्रादवज्ञातव्य ॥ २३ ॥ "नोउसप्पिणी" त्यादि, नोत्सर्पिणीमवसर्पिणीं प्रतीत्यानाद्यपर्यवसितं, महाविदेहेषु हि नोत्सर्पिण्यवसर्पिणीरूप काल । तत्र च सदैवावस्थित सम्यक् श्रुतमित्यनाद्यपर्यवसित, तथाभावतो 'णमितिवाक्यालकारे, 'ये' इत्यानि-र्दिष्टनिर्देशे ये केचन यदा पूर्वाह्णादौ जिनैं प्रज्ञप्ताजिन-प्रज्ञप्ता भावा —पदार्था 'आघविज्जति' ति प्राकृतत्त्वादाख्यायन्ते, सामान्यरूपतया विशेषरूपतया वा कथ्यन्ते इत्यर्थ प्रज्ञाप्यन्ते नामादिभेदप्रदर्शनेनाख्ययन्ते, तेषा नामादीना भेदा-प्रदर्श्यन्ते तत्यर्थ, प्ररूप्यन्ते नामादभेदस्वरूपकथनेन प्रख्यायते नामादीना भेदाना स्वरूपमाख्यायने इति भावाथ, यथा—"पज्जा-याणभिधेय ठियमन्नत्थे तदत्थनिरवेक्खं । जाइच्छियं च नाम जाव दव्व च पाएण ॥ १ ॥ छाया—पर्यायानभिधेय स्थितमन्यार्थेतदर्थनिरपेक्षम् । यादृच्छिकंच नाम यावद्द्रव्यञ्च प्रायेण ॥ १ ॥ जपुण तदत्थसुन्न तदभिप्पाएण तारिसागार । कीरइ व निरागारं इत्तरमियर च सा ठवणा । २ ॥ छाया—यत्पुनस्तदर्थशून्य तदभिप्रायेणतादृशाकारम् । क्रियतेवा निराकारमित्वर-मित्तरञ्च सा स्थापना ॥ २ ॥" इत्यादि, तथा-दर्श्यन्त – उपमानमात्रोपदर्शनेन प्रकटीक्रियन्ते, यथा गौरिव गवय, इत्यादि, तथा निदर्श्यन्ते——हेतुदृष्टान्तोपदर्श-नेन स्पष्टतरीक्रियन्ते, उपदर्श्यंते —उपनयनिगमनाभ्या नि शंक शिष्यबुद्धौ स्थाप्यन्ते, अथवा उपदर्श्यंते—सकलनयाभिप्रायावता-

रणात पटुप्रज्ञशिष्यबुद्धिषु व्यवस्थाप्यन्ते, तान् भावान 'तदा' तस्मिन् काले तथा ऽऽख्यायमानान् प्रतीत्य सादिसपर्यवसित, एतदुक्तं भवति तस्मिन काले त न प्रज्ञापकोपयोग स्वरविशेष प्रयत्नविशेष नामनाविशेप मङ्गविन्यासादिक च प्रतीत्य सादिसपर्यवसिनम्, उपयोगादे प्रतिकालमन्यथाऽन्यथाभवनात उक्तं च — 'उपयोगपरपयत्ता आसणभेयाइया य पइसमयं । भिणा पण्णवगस्सा साइयसपज्जतय तम्हा' ॥ १ ॥ क्षायोपशमिकभाव पुन प्रतीत्यानाद्यवसित, प्रवाहरूपेण क्षायोपशमिक भावस्यानाद्यपर्यवसितत्वात्, अथवाऽत्र चतुर्भंगिका, तद्यथा—सादिसपर्यवसितं १ साद्यपर्यवसित २ मनादिसपर्यवसित ३ मनाद्यपर्यवसित च ४, तत्र प्रथमभंगप्रदर्शनायाह—'अथवे' त्यादि, अथवेति प्रकारान्तरोपदर्शने भवसिद्धिकोभव्यस्तस्य सम्यक् श्रत सादि (स) पर्यवसितं, सम्यक त्वलाभे प्रथमतयाभावात् भूयोमिथ्यात्वप्राप्तौ केवलोत्पत्तौ वा विनाशात्, द्वितीयस्तु भंग शून्यो, नहि सम्यक् श्रुत मिथ्याश्रुत वा सादि भूत्वाऽपर्यवसितं सभवति, मिथ्यात्वप्राप्तौ केवलोत्पत्तौ चाऽवश्य सम्यक् श्रुतस्यविनाशात्, मिथ्याश्रतस्यापि च सादेरवश्य कालान्तरे सम्यक्त्वावाप्तावभावात् इति, तृतीयभङ्गस्तु मिथ्याश्रुतापेक्षयावेदितव्य, तथाहि—भव्यस्यानादिमिथ्यादृष्टेर्मिथ्याश्रुतमनादि सम्यक्त्वावाप्तौ च तदपयातीति सपर्यवसित, चतुर्थभङ्गकं पुनरुपदर्शयति— अभव्ये

त्यादि, अभवसिद्धिक—अभव्यस्तस्य श्रुत मिथ्याश्रुतमनाद्य-पर्यवसित, तस्य सदैव सम्यक्त्वादिगुणहीनत्वात्, एषा चतुर्भंगिका यथाश्रुतस्योक्तातथामतेरपिद्रष्टव्या, मतिश्रुतयोरन्योन्यानुगतत्वात्, केवलमिहश्रुतस्य प्रक्रान्तत्वात्साक्षात्तस्यैव दर्शिता, अत्राह—ननुतृतीयभगे चतुर्थभगेवा श्रुतस्यानादिभाव उक्त, सच जघन्य उत मध्यम आहोस्विदुत्कृष्ट ?, उच्यते, जघन्यो मध्यमोवा न तूत्कृष्टो, यतस्तस्येद मान—'सव्वागासे' त्यादि, सर्वं च तदाकाश च—सर्वाकाश, लोकाकोकाकाशमित्यर्थ, तस्य प्रदेशा—निर्विभागाभागा सर्वाकाशप्रदेशास्तेषामग्र—प्रमाण सर्वाकाशप्रदेशाग्र तत् सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तगुणितम्—अनन्तशोगुणितमेकैकस्मिनआकाशप्रदेशेऽनन्तागुरुलघुपर्यायभावात्, पर्यायाग्राक्षर निष्पद्यते—पर्यायपरिमाणाक्षर निष्पद्यते, इयमत्र भावना—सर्वाकाशप्रदेशपरिमाण सर्वाकाशप्रदेशैरनन्तशोगुणित यावत् परिमाण भवति तावत् प्रमाण सर्वाकाशपर्यायाणामग्र भवति, एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे यावन्तो ऽ गुरुलघु पर्यायास्ते सर्वेऽपि एकत्रपिण्डिता एतावन्तो भवन्तीत्यर्थ, एतावत् प्रमाण चाक्षर भवति, इह स्तोकत्वा धर्मास्तिकायादय साक्षात् सूत्रे नोक्ता, परमार्थतस्तेऽपि गृहीताद्रष्टव्या, ततोऽयमर्थ—सर्वद्रव्यप्रदेशाग्र सर्वद्रव्यप्रदेशैरनन्तशोगुणितं यावत परिमाण भवति तावत प्रमाणं—सर्वद्रव्यपर्याय परिमाण,—एतावत् परिमाणं चाक्षरं

भवति, तदपि चाक्षरद्विधाज्ञानमकारादिवर्णजातञ्च, उभयत्रापि अक्षरशब्दप्रवृत्ते रूढत्वात्, द्विविधमपि चेह गृह्यते, विरोधाभावात्, ननु ज्ञानंसर्वद्रव्यपर्य्यायपरिमाणं सम्भवतु, यतो ज्ञानमिहाविशेषोक्तौ सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यताऽभिधानात् प्रक्रमाद् वा केवलज्ञानं गृह्यते, तच्च सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं घटतएव, तथाहि—यावन्तो जगतिरूपिद्रव्याणां ये गुरुलघुपर्याया ये च रूपिद्रव्याणामरूपिद्रव्याणां वाऽगुरुलघुपर्यायास्तान सर्वानपि साक्षात् करतलकलित मुक्ताफलमिव केवलालोकेन प्रतिक्षणमवलोकते भगवान, नच येन स्वभावेनैकंपर्यायं परिच्छिनन्ति तेनैव स्वभावेन पर्यायान्तरमपि, तयो पर्याययोरेकत्त्वप्रसक्ते, तथाहि—घटपर्यायपरिच्छेदनस्वभावं यज्ज्ञानं तद्यदा पटपर्याय परिच्छेत्तुमलं तदा पटपर्यायाणामपि घटपर्यायरूपत्तापत्ति अन्यथा तस्यतत्परिच्छेदकत्त्वानुपपत्ते., तथा रूपस्वभावाभावात्, ततो यावन्त परिच्छेद्या पर्याया स्तावन्त परिच्छेदकास्तस्य केवलज्ञानस्य स्वभावा वेदित्तव्याः, स्वभावाश्च पर्यायास्तत पर्यायानधिकृत्य सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं केवलज्ञानमुपपद्यते, यदकारादिकं वर्णजातं तत् कथ सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणंभवितुमर्हति ?, तत्पर्यायराशे सर्वद्रव्यपर्यायाणामनन्ततमे भागे वर्तमानत्वात्, तदयुक्त, अकारादेरपिस्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यत्वात्, आह च भाष्यकृत्—"एक्केक्कमक्खरं पुण सपरपज्जायभेदओ

भिन्न। तं सव्व दव्वपज्जायरासिमाण मुणेयव्वं ॥ १ ॥ छाया—एकैकमक्षरपुन. स्वपरपर्यायभेदतोभिन्न । तत् सर्वद्रव्यपर्याय-राशिमानं ज्ञातव्यं ॥ १ ॥" अथकथस्वपरपर्य्यायापेक्षया सर्व व्य-पर्यायराशितुल्यता ?, उच्यते, इह अ अ अ इत्युदात्तोऽनुदात्त. स्वरितश्च, पुनरप्येकैकोद्विधा—सानुनासिकोनिरनुनासिकश्चेत्यका-रस्यपड्भेदा, तांश्चपड्भेदान् अकार केवलो लभते, एवककारे-णापि संयुक्तो लभते पड्भेदान्एवं खकारेण एव यावद्धकारेण, एवमेकैककेवलव्यञ्जनसंयोगे यथा पट् २ भेदान् लभते तथा सजातीय विजातीयव्यनञ्जद्विकसंयोगेऽपि, एव स्वरान्तर संयुक्त तत्तद्व्यञ्जनसहितोऽप्यनेकान भेदान लभते, अपिच—एकैको-ऽप्युदात्तादिकोभेद' स्वरविशेपादनेकभेदोभवति, वाच्यभेदादपि समानवर्णश्रेणिकस्यापि शब्दस्यभेदो जायते, तथाहि—न येनैव स्वभावेन करशब्द हस्तमाचष्टे तेनैव स्वभावेन किरणमपि, किन्तु स्वभावभेदेन, तथाऽकारोऽपि तेनतेन ककारादिना सयुज्यमानस्तं तमर्थं ब्रुवाणोभिन्नस्वभावो वेदितव्य, ते च स्वभावा अनन्ता-ज्ञातव्या, वाच्यस्यानन्तत्वात्, एते च सर्वेऽप्यकारस्य स्वपर्याया, शेषास्तु सर्वेऽपि घटादिपर्याया आकारादिपर्यायाश्च परपर्याया, ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणा तेऽपि चाकारस्य सम्बधिनोद्रष्टव्या., आहच— ये स्वपर्यायास्ते तस्य सम्बन्धिनो भवन्तु, ये तु परपर्या-यास्ते विभिन्नवस्त्वाश्रयत्वात् कथं तस्यसम्बन्धिनोव्यपदिश्यंते ?,

उच्यते, इहद्विधासम्बन्ध —अस्तित्वेन नास्तित्वेन च, तत्रास्तित्वेन सम्बन्ध स्वपर्यायै यथा घटस्यरूपादिभि नास्तित्वेन संबन्ध परपर्यायै तेपातत्रासभवात् यथा घटावस्थाया मृद पिण्डाकारेण पर्यायेण यतएव च ते तस्य न सन्ति इति नास्तित्वसंबन्धेन सम्बद्धा अतएव च ते परपर्याया एवतेभवेयु, ननु ये यत्रन विद्यन्ते ते कथं तस्येतिव्यपदिश्यते ?, न खलुधन दरिद्रस्य न विद्यते इति तत्तास्य सबन्धि व्यपदेष्टुम शक्य, मा प्रापत लोकव्यवहारातिक्रम, तदेतत् महामोहमूढमनस्कतासूचक, यतो यदि नामते नास्तित्वसबन्धमधिकृत्य तस्येति न व्यपदिश्यते तर्हि सामान्यतो न सन्तीति प्राप्त, तथा च स्वरूपेणापि न भवेयु नचैतदृष्टमिष्ट वा, तस्मादवश्यते नास्तित्वसंबन्धमङ्गीकृत्य तस्येति व्यवदेश्या, धनमपि च नास्तित्वसंबधमधिकृत्य दरिद्रस्येति व्यपदिश्यत एव, तथा च लोके वक्तारो—धनमस्यदरिद्रस्य न विद्यते इति, यदपि चोक्त—'न तत्तस्येति व्यपदेष्टु शक्य'मिति तत्रापितदस्तित्वेन तस्येति व्यपदेष्टु न शक्य, न पुनर्नास्तित्वेनापि, ततो न कश्चिद्लौकिकव्यवहारातिक्रम, ननु नास्तित्वमभाव. अभावश्चतुच्छरूप तुच्छत्वेन च सह कथ सबन्ध ? तुच्छस्य सकलशक्तिविकलतया सबन्धशक्तेरप्यभावात्, अन्यच्च-यदि परपर्यायास्तत्र नास्तित्वे तर्हि नास्तित्वेनास्तह सबन्धा-भव], परप-र्यायैस्तु सह कथ ? न खलु घट पटाभावेन सम्ब-

बद्ध पटेनापि सह सम्बद्धो भवितुमर्हति, तथा प्रतीतेरभावात्, तदेतदसमीचीनं, सम्यक्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात् तथाहि— नास्तित्वं नाम तेनतेन रूपेणाभवनमिष्यते, तच्च तेनतेन रूपेणाभवनं वस्तुनो धर्म, ततोनैकान्तेन तत्तुच्छरूपमिति न तेन सह संबन्धाभाव, तदपि च तेनतेन रूपेणाभवनं तंतंपर्यायमपेक्ष्य भवति, नान्यथा, तथाहि—यो यो घटादिगत पर्यायस्तेनतेनरूपेण मया न भवितव्यमिति सामर्थ्यात्तां तं पर्यायमपेक्षते इति सुप्रतीतमेतत्, ततस्तेन-तेन पर्यायेणा भवनस्य त त पर्यायमपेक्ष्य सभवात्तेऽपि परपर्यायास्तस्योपयोगिन इति तस्येति व्यपदिश्यन्ते, एवरूपायां च विवक्षायां पटोऽपि घटस्य संबन्धीभवत्येव, पटमपेक्ष्यघटेपटरूपेणा-भवनस्य भावात्, तथा च लौकिका अपि घटपटादीन् परस्परमितरेतराभावमधिकृत्यसम्बद्धान् व्यवहरन्तीत्यविगीतमेतत्, इतश्च ते परपर्यायास्तस्येति व्यपदिश्यंते—स्वपर्यायविशेषणत्वेन तेषामुपयोगात्, इह ये यस्य स्वपर्यायविशेषणत्वेनोपयुज्यते ते तस्य पर्याया यथा घटस्यरूपादय पर्याया परस्पर विशेषका, उपयुज्यंते चाकारस्य पर्यायाणांविशेषकतया घटादिपर्याया, तानन्तरेण तेषा स्वपर्यायव्यपदेशासंभवात—तथाहि—यदि ते परपर्याया न भवेयु तर्ह्यकारस्य स्वपर्याया स्वपर्याया इत्येवं न व्यपदिश्येरन, परापेक्षयास्वव्यपदेशस्यभावात्, तत स्वपर्यायव्यपदेशकारणतयातेऽपिपरपर्यायास्तस्योपयोगिन इतितस्यति व्यपदि-

श्यंते, अपिचसर्ववस्तु प्रतिनियतस्वभावं, सा च प्रतिनियतस्वभावता प्रतियोग्यभावात्मक तोपनिवन्धना, ततो यावन्न प्रतियोगिज्ञानं भवति तावन्नाधिकृतं वस्तु तदभावात्मक तत्त्वतो ज्ञातुं शक्यते, तथा च सति घटादिपर्यायाणामपि अकारस्य प्रतियोगित्वात्तदपरिज्ञाने नाकारो याथात्म्येनावगतु शक्यते इति घटादिपर्याया अपि अकारस्यपर्याया, तथाचात्र प्रयोग—यदनुपलब्धौ यस्यानुपलब्धि स तस्य संवन्धी यथा घटस्य रूपादय ,घटादिपर्यायानुपलब्धौ चाकारस्य न याथात्म्येनोपलब्धिरिति ते तस्य संबन्धिन नचायमसिद्धोहेतु , घटादिपर्यायरूपप्रतियोग्यज्ञाने तदभावात्मकस्याकारस्य तत्त्वतोज्ञातत्वायोगादिति, आह च भाष्यकृत्—"जेसु अनाएसु तओ न नज्जए नज्जए य नाएसु । कह तस्स ते न धम्मा ?, घडस्सरूवाइधम्मव्व ॥ १ ॥ छाया ॥ येष्वज्ञातेषु स को न ज्ञायते ज्ञायते च ज्ञातेषु । क तस्य ते न धर्मा घटस्य रूपादि धर्मा इव ॥ १ ॥" तस्माद् घटादिपर्याया अपि अकारस्य संबन्धिन इति स्वपरपर्यायापेक्षयाऽकार सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाण, एवमाकारादयोऽपि वर्णा सर्वे प्रत्येक सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणा वेदितव्या एव घटादिकमपि प्रत्येक सर्वं वस्तुजातं परिभावनीय, न्यायस्य समानत्वात्, न चेतदनार्ष, यत उक्तमाचाराङ्गे—"जे एग जाणइ, से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एग जाणइ" अस्यायमर्थ —य एकं वस्तूपलभते सर्वपर्यायैः

स नियमान् सर्वमुपलभते, सर्वोपलब्धिमन्तरेण विवक्षितस्यै-कस्य स्वपरपर्यायभेदभिन्नतया सर्वात्मनावगन्तुमशक्यत्वात्, यश्च सर्वं सर्वात्मना साक्षादुपलभते स एकं स्वपरपर्यायभेदभिन्नं जानाति, तथाऽन्यत्राप्युक्तं "एकोभावः सर्वथा येन दृष्टः, सर्वे-भावाः सर्वथा तेनदृष्टाः। सर्वेभावाः सर्वथा येन दृष्टाः, एको-भावः सर्वथा तेन दृष्टः ॥ १ ॥' तदेवमकारादिकमपिवर्णजातं केवलज्ञानमिव सर्वद्रव्यपर्याय परिमाणमिति न कश्चिद्विरोधः। अपि च केवलज्ञानमपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं यतस्तदात्मस्वभा-वरूपं न घटादि वस्तु स्वभावात्मकं ततो ये घटादिस्वपर्याया-स्ते तस्यपर्याया ये तु परिच्छेदकत्वस्वभावास्ते स्वपर्यायापर-पर्याया अपि चपूर्वोक्तयुक्तेस्तस्यसम्बन्धिन इति स्वपरपर्यायभेद-भिन्नं तथा चाह—भाष्यकृत्—वत्थुसहावं पइ तंपि सपरपज्जायभेद-भिन्नं तु। तं जेण जीयभावो भिन्ना य तओ घडाईया ॥ १ ॥ छाया, वस्तुस्वभावं प्रति तदपि स्वपरपर्यायभेदभिन्नं तु। तत येन जीवभावः भिन्नाश्च ततो घटादिकाः ॥ ततः पर्यायपरिमाणचिता-यां परमार्थतो न कश्चिदकारादिश्रुत केवलज्ञानयोर्विशेषः, अयंतु विशेष - केवलज्ञानं स्वपर्यायैरपि सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणतुल्यम-कारादिकं तु स्वपरपर्यायैरेव, तथाहि—अकारस्य स्वपर्यायाः सर्वद्र-व्यपर्यायाणामनन्ततमभागकल्पाः, परपर्यायास्तुस्वपर्यायरूपानन्तत-मभागोनः सर्वद्रव्यपर्यायाः, ततः स्वपरपर्यायैरेव सर्वद्रव्यपर्याय-

परिमाणमकारादिकंभवति, आह च भाष्यकृत –सय पज्जाएहि उ केवलेण तुल्लं न होइ न परेहिं। सयपरपज्जाएहिं तु तं तुल्लं केवलेणेव ॥ १ ॥ छाया ॥ स्वपर्यायैस्तु केवलेन तुल्यं न भवति न परैः। स्वपरपर्यायैस्तु तत्तुल्यं केवलेनैव । १ ॥ यथा चाकारादिकं सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तथा मत्यादीन्यपि ज्ञानानिद्रष्टव्यानि न्यायस्य समानत्वात ॥ इह यद्यपि सर्वं ज्ञानमविशेषेणाक्षरमुच्यते सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं च भवति तथापिश्रुताधिकारादिहाक्षरं श्रुतज्ञानमवसेयं, श्रुतज्ञानञ्चमतिज्ञानाविनाभूततो मतिज्ञानमपि तदेव यत श्रुतज्ञानमकारादिकं चोत्कर्षतः सर्वद्रव्यपर्यायपरिमाणं तच्च सर्वोत्कृष्टश्रुतकेवलिनो द्वादशाङ्गविदः समग्रमङ्गते न शेषस्य, ततोऽनादिभावः श्रुतस्य जन्तुः। जघन्योमध्यमो द्रष्टव्यः ततूकृष्ट इतिस्थितम्। अपर आहतन्वनादिभाव एव श्रुतस्य कथमुपपद्यते ? यावता यदा प्रबलश्रुतज्ञानावरणस्त्यानर्द्धि निद्रारूपदर्शनावरणोदयः सम्भवन्ति तदासम्भाव्यते सामस्त्येन श्रुतस्यावरणं यथाऽवध्यादि ज्ञानस्य ततोऽवध्यादिज्ञानमिवासादिमदेवयुच्यते श्रुतमपि नानादिमदिति कथं तृतीयचतुर्थभङ्गसम्भवः ?, तत्राह –'सव्वजीवाणंपि' सर्वजीवानामपि, शमिनियाक्यान्तःपाते एवज्ञरय–श्रुतज्ञानस्य (श्रुतमतुलितं केवलम्येन तु भाष्यकृत) श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाविनाभावि ततो मतिज्ञानस्यापि अनन्तोभागः 'निच्चुग्घाडिओ' सर्वदैवानावृत सोऽपिचान्तन्त-

तमोभागोऽनेकविध, तत्र सर्वजघन्यश्चैतन्यमात्रं, तत् पुन सर्वोत्कृष्टश्रुतावरणस्त्यानर्द्धिनिद्रोदय भावेऽपि नाव्रियते।, तथा जीवस्वाभाव्यात्, तथा चाह—जइ पुण' इत्यादि, यदि पुन सोऽपि अनन्ततमोभाग आव्रियते तेनतर्हि जीवोऽजीवत्वंप्राप्नुयात्, जीवोहिनाम चैतन्यलक्षणस्ततो यदिप्रबलश्रुतावरणस्त्यानर्द्धि निद्रोदयभावेचैतन्यमात्रमप्याव्रियेत तर्हि जीवस्यस्वभावपरित्यागादजीवतैव सम्पनीपद्येत, नचैतदृष्टमिष्टं वा, सर्वस्य सर्वथा स्वभावानिरस्कारात्, अत्रैवदृष्टान्तमाह—'सुट्ठवी' त्यादि, सुष्ठ्वपि मेघसमुदये भवति प्रभाचन्द्रसूर्ययो., इयमत्रभावना—यथा निविडनविडतर मेघपटलैराच्छादितयोरपि सूर्याचन्द्रमसोर्नैकान्तेन तत् प्रभानाश संपद्यते, सवस्य सर्वथा स्वभावापनयनस्य कर्तुमशक्यत्वात्, एवमनन्तानन्तैरपि ज्ञानदर्शनावरण कर्मपरमाणुभिरेकैकस्यात्मप्रदेशस्याऽऽवेष्टितस्यापि नैकान्तेन चैतन्यमात्रस्या (प्य) भावोभवति ततो यत्सर्वजघन्यं तन्मतिश्रुतात्मकत सिद्धोऽक्षरस्यानन्ततमोभागोनित्योद्घाटित, तथाच सति मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य चानादिभाव प्रतिपद्यमानो न विरुध्यते इतिस्थित। 'सत्त' मित्यादि, तदेतत् सादिसपर्यवसित मनादिपर्यवसितं च ॥ इति श्री नन्दीसूत्रेऽक्षरानन्तभागस्य नित्योद्घाटिता समाप्ता

सूत्रम्—इच्चेइयंमि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा आणता अभावा अणताहेऊ अणंता कारणा अणंता

अकारणा अणंता जीवा अणंता अजीवा अणंता भवसिद्धिया अणंता अभवसिद्धिया अणंता सिद्धा अणंताअसिद्धा पण्णत्ता--'भावमभावाहेऊमहेऊ कारणमकारणे चेव' जीवाजीवा भविअमभविआ सिद्धा असिद्धाय ॥ श्रीनन्दीसूत्र, गाथा ८५ ॥

टीका—'इत्येतस्मिन द्वादशाङ्गे गणिपिटके' एतत्पूर्ववदे-व्याख्येयं, अनन्ता भावा—जीवादय पदार्था, प्रज्ञप्ता इति योग, तथा अनन्ता अभावा —सर्वभावाना पररूपेणासत्त्वात् त एवानन्ता अभावा द्रष्टव्या, तथाहि—स्वपरसत्ताभावाभावात्मक वस्तुतत्त्व, यथा जीवो जीवात्मना भावरूपो अजीवात्मना चाभावरूप, अन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गात् अत्र बहुवक्तव्य तत्तु नोच्यते ग्रन्थगौरवभयादिति तथाऽनन्ता 'हेतवो' हिनोति—गमयति जिज्ञासितधर्मविशिष्टमर्थमिति हेतु, ते चानन्ता, तथाहि-वस्तुनोऽनन्ता धर्मास्ते च तत्प्रतिबद्धधर्मविशिष्टवस्तुगमकास्ततोऽनन्ता हेतवो भवन्ति यथोक्तहेतुप्रतिपक्षभूता अहेतव तेऽपि अनन्ता, तथा अनन्तानि कारणानि—घटपटादीना निर्वर्त्तकानि मृत्पिण्डतन्त्वादीनि अनन्तान्यकारणानि, सर्वेषामपि कारणाना कार्यान्तराण्यधिकृत्याकारणत्वात्, तथा जीवा —प्राणिन, अजीवा —परमाणुद्व्यणुकादय, भव्या —अनादिपारिणामिकसिद्धि गमनयोग्यतायुक्ता, तद्विपरीतास्त्वभव्या, सिद्धा-

अपगतकर्ममलङ्कारा, असिद्धा,—संसारिणः, एते सर्वेऽप्यनन्ताः, प्रज्ञप्ता, इह भव्याभव्यानामानन्त्येऽभिहितेऽपि यत्पुनस्सिद्धा इत्यभिहितं तत् सिद्धेभ्य संसारिणामनन्तगुणताख्यापनार्थं ॥

॥ वन्देवीरम् ॥

अथ प्रज्ञापनोपाङ्गे पञ्चमं पर्यायपदम्

मूलम्—कइविहा णं भंते! पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! दुविहा पज्जवा पन्नत्ता, तंजहा—जीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य। जीवपज्जवा णं भंते! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता?, गोयमा! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—जीवपज्जवा नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता?, गोयमा! असंखिज्जा नेरइया असंखिज्जा असुरकुमारा असंखिज्जा नागकुमारा असंखिज्जा सुवण्णकुमारा असंखिज्जा विज्जुकुमारा असंखिज्जा अग्गिकुमारा असंखिज्जा दीवकुमारा असंखिज्जा उदहिकुमारा असंखिज्जा दिसीकुमारा असंखिज्जा वाउकुमारा असंखिज्जा थणियकुमारा असंखिज्जा पुढविकाइया असंखिज्जा आउकाइया असंखिज्जा

तेउकाइया असंखिज्जा वाउकाइया अणंता वणप्फइ काइया असंखेज्जा बेइंदिया असंखेज्ज, तेइंदिया असंखेज्जा चउरिंदियाअसंखेज्जा पचिंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जामणुस्सा असंखेज्जा वाणमंतरा असंखेज्जा जोइसिया असंखेज्जा वेमाणिया अणंता सिद्धा. से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ तेणं नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता ॥ सूत्रं १०३।

टीका– कइविहा णं भंते ! पज्जवा पन्नत्ता ?' इति, अथ केनाभिप्रायेण गौतमस्वामिना भगवानेवं पृष्ट ? उच्यते, उक्तमादौ प्रथमे पदे प्रज्ञापना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—जीव प्रज्ञापना अजीवप्रज्ञापना चेति, तत्र जीवाश्चाजीवाश्च द्रव्याणि, द्रव्यलक्षणं चेदम्— 'गुणपर्यायवद्द्रव्य' मिति (तत्वा० अ० ५ सू० ३७) ततो जीवाजीवपर्यायभेदावगमार्थमेव प्रश्नान्, तथा च भगवानपि निर्वचनमेवमेवाह–'गोयमा !' दुविहा पज्जवा पन्नत्ता, तंजहाजीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य इति, तत्र पर्याया गुणाविशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरं, ननु सम्बन्धं प्रतिपादयतोक्तम्—इह त्वौदयिकादिभावा श्रयपर्यायपरिमाणावधारण प्रतिपाद्यत, इति, औदयिकादयश्च भावा जीवाश्रया. ततो जीवपर्याया एव गम्यन्ते अथ चास्मिन्निर्वचनसूत्रे द्रव्यानामपि पर्याया उक्त स्ततो न सुन्दर. सम्बन्ध, तदनुक्तम, अभिप्रायापरिज्ञानात्, औदयि-

को हि भाव पुद्गलवृत्तिरपि भवति, ततो जीवाजीवभेदेनौद-यिकभावस्य द्वैविध्यात् सम्बन्धतः पर्यवनिर्वचनसूत्रयोर्विरोधः। सम्प्रति सम्बन्ध (पर्याय) परिमाणावगमाय पृच्छति–'जीव-पज्जवा णं भंते! किं संखेज्जा' इत्यादि, इह यस्माद्वनस्पति-सिद्धवर्जाः सर्वेऽपि नैरयिकादयः प्रत्येकमसंख्येयाः मनुष्याश्चासं-ख्येयास्तु सम्मूर्छिममनुष्यापेक्षया वनस्पतयः सिद्धाश्च प्रत्येकम-नन्ताः तत पर्यायिणामनन्तत्वात् भवन्त्यनन्ता जीवपर्यायाः॥ तदेवं गौतमेन सामान्यतो जीवपर्याया पृष्टा भगवानपि सा-मान्येन निर्वचनमुक्तवान्, इदानीं विशेषविषयं प्रश्नं गौतम-स्वाह —

मूलम्–नेरइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंतापज्जवा पन्नत्ता. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! नेरइए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएस-ट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असं-खिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जइभाग-मब्भहिए वा संखिज्जइभागमब्भहिए वा संखिज्ज-गुणमब्भहिए वा असंखिज्जगुणमब्भहिए वा. ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे

असंखिज्जइभागहीणे वा, संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभागमब्भहिए वा संखिज्ज-भागमब्भहिए वा संखिज्जगुणमब्भहिइ वा असं-खिज्जगुणमब्भहिए वा कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइहीणे अणंत-भागहीणे वा असंखेज्ज भागहीणे संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा अह अब्भहिए अणंतभागमब्भ-हिए वा असखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्जभागमब्भ-हिए वा सखेज्जगुणमब्भहिय वा असखेज्जगुणमब्भ-हिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा, नीलवन्नपज्जवेहिं लाहिय वन्नपज्जवेहिं पोयवन्नपज्जवेहिं हालि-द्दवन्नपज्जवेहिं सुक्किल्लवन्नपज्जवेहि छट्ठाणवडिए सुब्भिगधपज्जवेहिं दुब्भिगधपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफास-पज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिण फासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्ख-फासपज्जवेहि छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियनाण-

पज्जवेहिं सुयनाणपज्जवेहिं ओहिनाणपज्जवेहिं मइ-
अन्नाणपज्जवेहिं सुयअन्नाणपज्जवेहिं विभंगनाणपज्ज-
वेहिं चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं
ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं
गोयमा! एवं वुच्चइ नेरइयाणं नो संखेज्जा नो असं-
खेज्जा अणंता पज्जवा पन्नत्ता। (सू० १०४)

टीका 'नेरइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पन्नत्ता' इति, अथ केनाभिप्रायेणेदं गौतमः पृष्टवान्? उच्यते पूर्वं किल सामान्यप्रश्ने पर्यायाणामनन्तत्वात् पर्यायाणामानन्त्यमुक्तं, यत्र पुनः पर्यायाणामानन्त्यं नास्ति तत्र कथमिति पृच्छति—'नेरइयाणं' इत्यादि, तत्रापि निर्वचनमिदम् 'अनन्ता' इति, अत्रैव जातसंशयः प्रश्नयति—'सेकेणट्ठेणं भंते!' इत्यादि, अथ के-नार्थेन—केन कारणेन केन हेतुना भदन्त! एवमुच्यते—नैरयिकाणां पर्याया एवम्—अनन्ता इति? भगवानाह 'गोयमा!' नेरइए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, इत्यादि अथ पर्यायानन्त्यान-न्तरं [illegible] यतो इति चेत्? तदेव पर्यायानन्त्यं, यथा द्र-व्यतुल्यत्वं भवति तथा निर्दिश्यते [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

असंखिज्जइभागहीणे वा, संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभागमब्भहिए वा संखिज्ज-भागमब्भहिए वा संखिज्जगुणमब्भहिइ वा असं-खिज्जगुणमब्भहिए वा कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइहीणे अणंत-भागहीणे वा असंखेज्ज भागहीणे संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा अह अब्भहिए अणंतभागमब्भ-हिए वा असंखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्जभागमब्भ-हिए वा संखेज्जगुणमब्भहिय वा असंखेज्जगुणमब्भ-हिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा, नीलवन्नपज्जवेहिं लोहिय वन्नपज्जवेहिं पीयवन्नपज्जवेहिं हालि-द्दवन्नपज्जवेहिं सुक्किलवन्नपज्जवेहि छट्ठाणवडिए सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, कक्खडफासपज्जवेहि मउयफासपज्जवेहिं गरुयफास-पज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिण फासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्ख-फासपज्जवेहि छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियनाण-

पज्जवेहिं सुयनाणपज्जवेहिं ओहिनाण पज्जवेहिं मइ-अन्नाणपज्जवेहिं सुयअन्नाणपज्जवेहिं विभंगनाणपज्ज-वेहिं चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ नेरइयाणं नो संखेज्जा नो असं-खेज्जा अणंता पज्जवा पन्नत्ता । (सू० १०४)

टीका—'नेरइयाण भंते ! केवइयापज्जवा पन्नत्ता' इति, अथकेनाभिप्रायेणैवं गौतम पृष्टवान ?, उच्यते, पूर्वं किल सामान्यप्रश्ने पर्यायिणामनन्तत्वाद् पर्यायाणामानन्त्यमुक्तं, यत्र पुन पर्यायिणामानन्त्यं नास्ति तत्र कथमिति पृच्छति—'नेर-इयाण' इत्यादि, तत्रापि निर्वचनमिदम 'अनन्ता' इति, अत्रैव जातसंशय—प्रश्नयति—'सेकेणट्ठेण भंते !' इत्यादि, अथ के-नार्थेन—केन कारणेन केन हेतुना भदन्त ! एवमुच्यते—नैर-यिकाणा पर्याया एवम—अनन्ता इति ?' भगवानाह गोयमा ! नेर-इए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, इत्यादि, अथ पर्यायाणामान-न्त्यं कथं घटते इतिपृष्टे तदेव पर्यायाणामानन्त्यं यथा यु-क्त्युपपन्न भवति तथा निर्वचनीयं नान्यत् ततः केनाभिप्रा-येण भगवतैव निर्वचनमवाचि—नैरयिको नैरयिकस्यद्रव्यार्थतया तुल्य इति ! उच्येत, एकमपिद्रव्यमनन्तपर्यायमित्यस्य न्यायस्य प्रदर्शनार्थं तत्र यस्मादिदमपि नारक जीवद्रव्यमेकसंख्याऽवरुद्ध-

मिति नैरयिको नैरयिकस्यद्रव्यार्थतया तुल्य, द्रव्यमेवार्थोद्रव्य- र्थ तद्भावो द्रव्यार्थता तया द्रव्यार्थतया तुल्य एव तावत्द्रव्या र्थतया तुल्यत्वमभिहित, इदानीं प्रदेशार्थतामधिकृत्य तुल्यत्वमा- ह—'पएसट्ठयाए तुल्ले' इदमपि नारकजीवद्रव्यं लोकाकाशप्रदे- शपरिमाणप्रदेशमितिप्रदेशार्थतयापि नैरयिको नैरयिकस्य तुल्य, प्रदेशाएवार्थ तद्भाव प्रदेशार्थता तया प्रदेशार्थतया, कस्मादभि- हितमिति चेत्उच्यते, द्रव्यद्वैविध्यप्रदर्शनार्थं, तथाहि—द्विविधं द्रव्यं-प्रदेशवत् अप्रदेशवच्च, तत्र परमाणुरप्रदेश, द्विप्रदेश- त्रिप्रदेशादिकं तु प्रदेशवत्, एतच्चद्रव्यद्वैविध्यं पुद्गलास्तिकाय एव भवति, शेषाणि तु धर्मास्तिकायादीनि द्रव्याणि नियमात् सप्रदेशानि, 'ओगाहणट्ठयाए सियहीणे' इत्यादि, नैरयिकोऽस- ख्यातप्रदेशोऽपरस्य नैरयिकस्य तुल्यप्रदेशस्य अवगाहनमवगाह शरीरोच्छ्रय अवगाहनमेवार्थोऽवगाहनार्थस्तद्भवोऽवगाहनार्थता तया अवगाहनार्थतया 'सिय हीणे' इत्यादि, स्याच्छब्द- प्रशं- साऽस्तित्वविवादविचारणाऽनेकान्तसशयप्रश्नादि वर्थेषु, अत्राऽने- कातद्योतकस्य ग्रहणं, स्याद्धीन अनेकांतनहीन इत्यर्थ., स्यात्तु- ल्य:—अनेकान्तेन तुल्य इत्यर्थ, स्यादभ्यधिक - अनेकान्तेना- भ्यधिक इति भाव, कथमिति चेत, उच्यते, यस्माद्वक्ष्यति रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणा भवधारणीयस्यवैक्रियशरीरस्य जघ- न्येनावगाहनाया अङ्गुलस्याऽसख्येयो भाग उत्कर्षत सप्त धनूषि

त्रयो हस्ता षट् चाङ्गुलानि, उत्तरोत्तरासु च पृथिवीषु द्विगुणं २ यावत् सप्तमनरकपृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतोऽवगाहनाङ्गुलस्यासङ्ख्येयो भाग उत्कर्षत पञ्चधनुःशतानीति, तत्र 'जइ हीणे' इत्यादि, यदि हीनस्ततोऽसंख्येयभागहीनोवा स्यात् संख्येयभागहीनो वा संख्येयगुणहीनो वा स्यात् असंख्येयगुणहीनो वा, अथाभ्यधिकस्ततोऽसंख्येयभागाभ्यधिको वा स्यात् संख्येयभागाभ्यधिको वा संख्येयगुणाभ्यधिको वा असंख्येयगुणाभ्यधिको वा, कथमिति चेत्?, उच्यते, एकः किल नारकः उच्चैस्त्वेन पञ्च धनुःशतानि अपरस्तान्येवाङ्गुलासंख्येयभागहीनानि, अङ्गुलासंख्येयभागश्च पञ्चानां धनुःशतानां असंख्येये भागे वर्त्तते, तेन सोऽङ्गुलासंख्येयभागहीनः पञ्च धनुःशतप्रमाण अपरस्यपरिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणस्यापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनः, इतरस्त्वितरापेक्षया असंख्येयभागाभ्यधिकः तथा एकः पञ्चधनुःशतान्युच्चैस्त्वेन अपरस्तान्येव द्वाभ्यां त्रिभिर्वा धनुर्भिन्यूनानि ते च द्वे त्रीणि वा धनूंषि पञ्चानां धनुःशतानां संख्येयभागे वर्त्तते ततः सोऽपरस्य परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणस्यापेक्षया संख्येयभागहीनः, इतरस्तु परिपूर्णपञ्चधनुःशतप्रमाणस्तदपेक्षया संख्येयभागाभ्यधिकः, तथा एकः पञ्चविंशं धनुःशतमुच्चैस्त्वेनापरः परिपूर्णानि पञ्चधनुःशतानि, पञ्चविंशं च धनुःशतं चतुर्भिर्गुणितं पञ्चधनुःशतानि भवन्ति ततः पञ्चविंशत्यधिकधनुःशतप्रमाणोच्चै-

म्त्वेऽप्यपरस्य परिपूर्णपञ्चधनु शतप्रमाणस्यापेक्षया स ख्येयगुणहीनो भवति तदपेक्षया त्वितर परिपूर्णपञ्चधनु शतप्रमाणः संख्येयगुणाभ्यधिक., तथा एकोऽपर्याप्तावस्थायामङ्गुलस्यास ख्येयभागावगाहे वर्त्तते अन्यस्तु पञ्चधनु शतान्युच्चैस्त्वेन. अङ्गुलास ख्येयभागश्चास ख्येयेन गुणित सन पञ्चधनु शतप्रमाणोभवति, ततोऽपर्याप्तावस्थायामङ्गुलास ख्येयभागप्रमाणेऽवगाहे वर्त्तमान परिपूर्णपञ्चधनु शतप्रमाणापेक्षया अस ख्येयगुहीन', पञ्चधनु शप्रमाणस्तु तदपेक्षयाऽस ख्येयगुणाभ्यधिक । 'ठिईए सिय हीणे' इत्यादि, यथाऽवगाहनया हानौ वृद्धौ च चतु. स्थानपतितउक्तस्तथा स्थित्याऽपि वक्तव्य इति भाव एतदेवाह— 'जइहीणे' इत्यादि तत्रैकस्य किल नारकस्य त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थिति अपरस्य तु तान्येव समयादिन्यूनानि, तत्र य समयादिन्यूनम् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणस्थितिक स परिपूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकनारकापेक्षयाऽस ख्येयभागहीन परिपूर्णत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकस्तु तदपेक्षयाऽस ख्येयभागाभ्यधिक, समयादे सागरोपमापेक्षयाऽस ख्येयभागमात्रत्वात् , तथाहि—अस ख्येयैं समयैरेकाऽऽवलिका स ख्याताभिरावलिकाभिरेक उच्छ्वासनिश्वासकाल सप्तभिरुच्छ्वासनिश्वासैरेक स्तोक सप्तभिः स्तोकैरेकोलव सप्तसप्तत्या लवानामेको मुहूर्त्तः त्रिशता मुहूर्त्तैरहोरात्र पञ्चदशभिरहोरात्रै पक्ष द्वाभ्या पक्षाभ्या मास द्वादशभिर्मासै सम्वत्सर अस -

ख्येयै संवत्सरै. पल्योपमसागरोपमाणि, समयाऽवलिकोच्छ्रास-मुहूर्त्तादिवसाहोरात्रपक्षमाससंवत्सरयुगै हीन परिपूर्णस्थितिकना-रकापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनो भवति तदपेक्षयात्वितरोऽसंख्येय-भागाभ्यधिक, तथा एकस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणिस्थिति पर-स्य तान्येव पल्योपमैन्यूनानि, दशभिश्च पल्योपमकोटीकोटी-भिरेक सागरोपम निष्पद्यते, तत पल्योपमैन्यूनस्थितिक परि-पूर्णस्थितिकनारकापेक्षया सङ्ख्येयभागहीन परिपूर्णस्थितिकस्तु तदपेक्षया सङ्ख्येयभागाभ्यधिक तथैकस्य सागरोपममेकं स्थिति अपरस्य परिपूर्णानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, तत्रैकसागरोपम-स्थितिक परिपूर्णस्थितिकनारकापेक्षया संख्येयगुणहीन एकस्य सागरोपमस्य त्रयस्त्रिंशता गुणने परिपूर्णस्थितिकत्वप्राप्ते, परि पूर्णस्थितिकस्तु तदपेक्षया सङ्ख्येयगुणाभ्यधिक, तथैकस्य दशव-र्षसहस्राणि स्थिति अपरस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, दश वर्ष-सहस्राण्यसङ्ख्येयरूपेण गुणकारेण गुणितानि त्रयस्त्रिंशत्सागरो-पमाणि भवन्ति, ततो दशवर्षसहस्रस्थितिक त्रयस्त्रिंशत्सागरो-पमस्थितिकनारकापेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणहीन तदपेक्षया तु त्रयस्त्रिं-शत्सागरोपमस्थितिकोऽसङ्ख्येयगुणाभ्यधिक इति, तदेवमेकस्य नारकस्यापरनारकापेक्षया द्रव्यतो द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया च तुल्यत्वमुक्त क्षेत्रतोऽवगाहनं प्रति हीनाधिकत्वेन चतुःस्थानपतितत्वं कालतोऽपि स्थितितो हीनाधिकत्वेन चतुःस्थानपतितत्वं, इदानीं

भावश्रयं हीनाधिकत्वं प्रतिपाद्यते—यत सकलमेव जीवद्रव्य-मजीवद्रव्य वा परस्परतो द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विभज्यते यथा घट, तथाहि—द्रव्यत एको मार्त्तिक अपरः काञ्चनो राजतादिर्वा क्षेत्रत एक इहत्य अपर पाटलिपुत्रक कालत एकोऽद्यतन अन्य-स्त्वैषम पत्तनो वा भावत एक श्याम अपरस्तु रक्तादि; एवमन्यदपि। तत्र प्रथमतः पुद्गलविपाकिनाम कर्मोदयनिमित्तं जीवौदायिकभावाश्रयेण हीनाधिकत्वमाह—'कालवन्नप जत्तेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए' अस्याक्षरघटना पूर्ववत्, तत्र यथा हीनत्वमभ्यधिकत्वं च तथा प्रतिपादयति—'जइ हीणे' इत्यादि, इह भावाश्रया हीनताभ्यधिकता चिन्तायां हानौ वृद्धौ च प्रत्येकं षट्स्थानपतितत्वमवाप्यते, षट्स्थानके च यद्यदपेक्षयाऽन-न्तभागहीनं तस्य सर्वजीवानन्तकेन भागे हृते यल्लभ्यते तेना-नन्ततमेन भागेन हीनं, यच्च यदपेक्षयाऽसंख्येयभागहीन तस्यापेक्षणीयस्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणेन राशिना भागे हृते यल्लभ्यते तावता भागेन न्यून, यच्च यदधिकृत्य संख्येयभागहीनं तस्यापेक्षणीयस्योत्कृष्टसंख्येयकेन भागे हृते यल्लभ्यते तावता हीनं, गुणनसंख्यायां तु यद्यत. संख्येयगुणं तदवधिभू-तमुत्कृष्टेन संख्येयकेन गुणितं सद्यावद् भवति तावत्प्रमाणमव-मातव्यं, यच्च यतोऽसंख्येयगुणं तदवधिभूतमसंख्येयलोकाकाश-प्रदेशप्रमाणेन गुणकारेण गुण्यते गुणितं सद्यावद्भवति तावद-

वसेयम्, यच्च यस्मादनन्तगुण तदव धेभूत सर्वजीवानन्तक-रूपेण गुणकारेण गुण्यते गुणित सद्यावद्भवति तावत्प्रमाण द्रष्टव्य, तथा चैतदेव कर्मप्रकृतिसंग्रहिण्या षट्स्थानकप्ररूपणावसरे भागहारगुणकारस्वरूपमुपवर्णित, 'सव्वजीयाणमसंखलोगसंखेज्जगस्स जेट्ठस्स। भागोतिसु गुणणातिसु' इति, सम्प्रत्यधिकृतसूत्रोक्तषट्स्थानपतितत्व भाव्यते—तत्र कृष्णवर्णपर्यायपरिमाण तत्त्वतोऽनन्तसंख्यात्मकमप्यसद्भावस्थापनया किल दश सहस्राणि १०००० तस्य सर्वजीवानन्तकेन शतपरिमाणपरिकल्पितेन भागो ह्रियते लब्धं शत १०० तत्रैकस्य किल नारकस्य कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं दश सहस्राणि, अपरस्य तान्येवशतेन हीनानि ९९००, शत च सर्वजीवानन्तभागहारलब्धत्वादनन्ततमो भाग. ततोय यशतेन हीनानि दश सहस्राणि सोऽपरस्य परिपूर्णदश-सहस्रप्रमाणकृष्णवर्णपर्यायस्य नारकस्यापेक्षयाऽनन्तभागहीन तदपेक्षया तु सोऽपर.कृष्णवर्णपर्यायोऽनन्तभागाभ्यधिक, तथा कृष्णवर्णपयायपरिमाणस्य दशसहस्रसंख्याकस्यासख्येयलोकाकाश-प्रदेशप्रमाणपरिकल्पितेन पञ्चाशत्परिमाणेन भागहारेण भागो ह्रियते लब्धेद्वे शते एषोऽसंख्येयतमो भाग, तत्रैकस्य किल नारकस्य कृष्णवर्णपर्याया दश सहस्राणि शतद्वयेन हीनानि ९८०० अपरस्य परिपूर्णानि दश सहस्राणि १००००, तत्र य शतद्वयहीन-दशसहस्रप्रमाणकृष्णवर्ण पर्याय स परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायनार-

कापेक्षया असङ्ख्येयभागहीन परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायस्तु तदपेक्षयाऽसंख्येयभागाभ्यधिकः, तथा तस्यैव कृष्णवर्णपर्यायराशेर्दशसहस्रसङ्ख्याकस्योत्कृष्टसङ्ख्येयकपरिमाणकल्पितेन दशकपरिमाणेन भागहारेण भागो ह्रियते तल्लब्ध सहस्रं एष किल संख्याततमो भागः, तत्रैकस्य नारकस्य किल कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं नव सहस्राणि ९०००, अपरस्य दशसहस्राणि १००००, नव सहस्राणि तु दशसहस्रेभ्य सहस्रेण हीनानि सहस्र च सङ्ख्येयतो भाग—इति नवसहस्रमानकृष्णवर्णपर्याय परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायनारकापेक्षया सङ्ख्येयभागहीन तदपेक्षया त्वितरः सङ्ख्येयभागाधिकः, तथैकस्य नारकस्य किल कृष्णवर्णपर्यायपरिमाणं सहस्रं अपरस्य दश सहस्राणि, तत्र सहस्र दशकेनोत्कृष्टसङ्ख्यातक कल्पेन गुणितं दशसहस्रसंख्याकं भवति इति सहस्रसङ्ख्यकृष्णवर्णपर्यायो नारको दशसहस्रसङ्ख्याककृष्णवर्णपर्यायनारकापेक्षया संख्येयगुणहीन तदपेक्षया परिपूर्णकृष्णवर्णपर्याय सङ्ख्येयगुणाभ्यधिक तथैकस्य किल नारकस्य कृष्णवर्णपर्यायाग्रं द्वे शते परस्य परिपूर्णानिदशसहस्राणि, द्वे च शते असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणप्रकल्पितेन पञ्चाशत्परिमाणेन गुणकारेण गुणितो दशसहस्राणि जायन्ते, ततो द्विशतपरिमाणकृष्णवर्णपर्यायो नारकः परिपूर्णकृष्णवर्णपर्यायपरिमाण शतमपरस्य दशसहस्राणि शते च सर्वजीवानन्तपरिमाणपरिकल्पि-

तेन (शत) गुणकारेण गुणिते जायन्ते दशसहस्राणि, तत शतपरमाणुकृष्णवर्णपर्यायो नारक परिपूर्णकृष्णत्र पर्यायनारक.पेक्षया अनन्तगुणहीन इतरस्तु तदपेक्षयाऽनन्तगुणाभ्यधिक, यथा कृष्णवर्णपर्यायानधिकृत्य हानो वृद्धौ च षट् स्थानपतितत्वमुक्तमेवशेषवर्णगन्धरस स्पर्शैरपि प्रत्येक षट्स्थानपतितत्वं-भावनीय, । तदेव पुद्गलविपाकिनामकर्मोदयजनितजीवौदयिकभावाश्रयेण षट्स्थानपतितत्वमुपदर्शितं, इदानीं जीवविपाकिज्ञानावरणीयादिकर्मक्षयोपशमभावाश्रयेण तदुपदर्शयति—'आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं' इत्यादि, पूर्ववत् प्रत्येकमाभिनिबोधिकादिपु षट्स्थानपतितत्व भावनीय, इह द्रव्यतस्तुल्यत्व वदता समूच्छिमसवप्रभेदनिर्भेदबीज मयूराण्डकरसवदनभिव्यक्तदेशकालक्रम प्रत्ययवशद्धविशेषभेदपरिणतेर्योग्यद्रव्यमित्यावेदितं, अवगाहनया चतु स्थानपतितत्वमभिवदता क्षेत्रत सकोचविकोचधर्मा आत्मा न तु द्रव्यप्रदेशसख्याया इति दर्शित, उक्त चैतदन्यत्रापि—"विकसनसकोचयोनयोर्नस्तो द्रव्यप्रदेशसख्याया । वृद्धिह्रासौ स्त क्षेत्रतस्तु तावात्मनस्तस्मात् ॥ १ ॥" स्थित्या चतु स्थानपतितत्व वदताऽऽयु कर्मस्थितिनिर्वर्त्तकानामध्यवसायस्थानानामुत्कर्षापकर्षवृत्तिरुपदर्शिता, अन्यथा स्थित्या चतु स्थानपतितत्वायोगात्, आयु कर्मचोपलक्षणं तेन सर्वकर्मस्थितिनिर्वर्त्तकेष्वप्यध्यवसायेषूत्कर्षापकर्षवृत्तिरवसातव्या, कृष्णादिपर्यायैः षट्स्थानपतितत्त्व-

मुपदर्शयता एकस्यापि नारकस्य पर्याया अनन्ता किं पुनः सर्वेषां नारकाणामिति दर्शितं अथ नारकाणां पर्यायानन्त्यं पृष्टेन भगवता तदेव पर्यायानन्त्यं वक्तव्यं न त्वन्यत् तत किमर्थं द्रव्यक्षेत्रकालभावाभिधानमिति ?, तदयुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात्, इह न सर्वेषां सर्वे स्वपर्याया समसङ्ख्या किं तु षट्स्थानपतिता, एतच्चानन्तरमेव दर्शितं, तच्च षट्स्थापतितत्वं परिणामित्वमन्तरेण न भवति, तच्च परिणामित्वं यथोक्तलक्षणस्यद्रव्यस्येति द्रव्यतस्तुल्यत्वमभिहितं, तथा न कृष्णादिपर्यायैरेव पर्यायवान् जीव किं तु तत्तत्क्षेत्रसंकोचविकोचधर्मतयाऽपि तथा तत्तदध्यवसायस्थानयुक्ततयाऽपीति ख्यापनार्थं क्षेत्रकालाभ्यां चतुःस्थानपतितत्वमुक्तमिति कृतं प्रसङ्गेन । तदेवमवस्थितं नैरयिकाणां पर्यायानन्त्य, इदानीमसुरकुमारेषु पर्यायाग्रं पिपृच्छिषुराह—

मूलम्—असुरकुमाराणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! असुरकुमारे असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए एवं नीलवन्नपज्जवेहिं लोहियवन्नपज्जवेहि

हालिद्दवन्नपज्जवेहिं सुक्किल्लवन्नपज्जवेहिं पज्जवेहिं सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहिं तित्त-रसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अबि-लरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफास-पज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्ध-फास पज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं आभिणिबोहि-यणाणपज्जवेहिं सुयणाणपज्जवेहिं ओहिनाणपज्जवेहिं मइअन्नाणपज्जवेहिं सुयअन्नाणपज्जवेहिं विभंगनाण-पज्जवेहिं चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-असुरकुमाराणं अणंतापज्जवा पन्नत्ता एवं जहा नेरइया, जहा असुरकुमारा तहा नागकुमाराvि जाव थणियकुमारा (सूत्र १०५)॥

मूलम्-पुढविकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! पुढविकाइए पुढविकाइयस्स दव्वयट्ठाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइहीणे असंखिज्ज-

भागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिय वा संखिज्जगुणअब्भहिए वा असंखिज्जगुणअब्भहिए वा ठिईए तिट्ठाणवडिए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा वन्नेहि गंधेहिं रसेहिं फासेहिं मइअन्नाणपज्जवेहि सुयअन्नाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ आउकाइयाणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ आउकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! आउकाइए आउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुअअन्नाणअचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ तेउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ तेउकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! तेउ-

काइए तेउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुयअन्नाण अचक्खुदंसणपज्जवेहिं यछट्ठाणवडिए ॥ वाउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! वाउकाइयाणं अणतापज्जवापन्नत्ता, से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइवाउकाइयाण अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! वाउकाइए वाउकाइयस्सट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठाए तुल्ले अ गाहणट्ठयाए चउदव्वट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुयअन्नाणअचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ॥ वणस्सइकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ — वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! वणस्सइकाइए वणस्सइकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासमइअन्नाणसुयअन्नाणअचक्खुदंसणपज्जवेहि यछट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ॥ (सूत्र १०६)

मूलम्—वेइंदियाण पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ-वेइंदियाणं अणंता

पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा ! बेइंदिए बेइंदियस्स दव्व-ट्टयाए तुल्ले पएसट्टयाए तुल्ले ओगाहणट्टयाए सिय-हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखि-ज्जइभागहीणे वा संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइ-गुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा, अह अब्भ-हिए असंखिज्जभागअब्भहिए वा संखिज्जइभाग-अब्भहिए वा संखिज्जगुणमब्भहिए वा असंखिज्ज-इगुणमब्भहिए वा, ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरस-फास अभिणिबोहियनाणसुयनाणमइअन्नाण सुय-अन्नाण अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, एवं तेइंदियावि, एव चउरिंदियावि नवरं दो दंसणा चक्खुदंसणा अचक्खुदंसणा सूत्र १०७)

मूलम्–पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जवा जहा नेरइयाणं तहा भाणियव्वा सूत्र १०८)

मूलम्–मणुस्साणं भंते ! केवइया पज्जवा पन्नत्ता ? गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-मणुस्साणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! मणूसे मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास-आभिणिबोहियनाणसुयनाणओहिनाणमण पज्जव-

नाणकेवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले (सूत्र १०९)

मूलम्- वाणमंतरा ओगाहणट्ठयाए ठिईए चउट्ठाणवडिया वण्णाईहिं छट्ठाणवडिया जोईसिया वेमाणियावि एवं चेव नवरं ठिईए तिट्ठाणवडिया (सूत्र ११० ॥

टीका—'असुरकुमाराणं भंते! केवइया पज्जवा पन्नत्ता?' इत्यादि, उक्त एवार्थः प्रायः सर्वेष्वप्यसुरकुमारादिषु, ततः सकलमपि चतुर्विंशतिदण्डकसूत्रं प्राग्वद् भावनीयं, यस्तु विशेषः स उपदर्श्यते, तत्र यत्पृथिवीकायिकादीनामवगाहनया अङ्गुलासंख्येयभागप्रमाणा अपि चतुःस्थानपतितत्वं तदङ्गुलासंख्येयभागप्रमाणस्य संख्येयभेदभिन्नत्वादवसेयं, स्थित्या हीनत्वमभ्यधिकत्वं च त्रिस्थानपतितं न चतुःस्थानपतितं, असंख्येयगुणवृद्धिहान्योरसंभवात्, कथं तयोरसंभव इति चेत्, उच्यते, इह पृथिव्यादीनां सर्वजघन्यमायुः क्षुल्लकभवग्रहणं, क्षुल्लकभवग्रहणस्य च परिमाणमावलिकानां द्वे शते षट्पञ्चाशदधिके, मुहूर्त्ते च द्विघटिकाप्रमाणे सत्रसंख्यया क्षुल्लकभवग्रहणानां पञ्चषष्टिः सहस्राणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशदधिकानि ६५५३६, उक्तं च—'दोन्निसयाइं नियमा छप्पन्नाइं पमाणओ हुंति। आवलियपमाणेणं खुड्डागभवग्गहणमेयं ॥ १ ॥ पन्नट्ठिसहस्साइं पंचेवसयाइं तह य छत्तीसा। खुड्डागभवग्गहणं भवंति एगे

मुहुत्तेण ॥ २ ॥ पृथिव्यादीनां च स्थितिरुत्कर्षतोऽपि संख्येयवर्षप्रमाणा ततो नासंख्येयगुणवृद्धिहान्योः संभवः, शेषवृद्धिहानित्रिकभावनात्वेवम्एकस्य किल पृथिवीकायस्य स्थितिः परिपूर्णानि द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि अपरस्य तान्येवसमयन्यूनानि ततः समयन्यूनद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकापेक्षयाऽसंख्येयभागहीनः तदपेक्षया त्वितरोऽसंख्येयभागाधिकः, तथैकस्य परिपूर्णानि द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि स्थितिरपरस्य तान्येवान्तर्मुहूर्त्तादिनोनानि, अन्तर्मुहूर्त्तादिकं (च) द्वाविंशतिवर्षसहस्राणां संख्येयतमो भागः, ततोऽन्तर्मुहूर्त्तादिन्यूनद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकापेक्षया संख्येयभागहीनः तदपेक्षया परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः संख्येयभागाभ्यधिकः, तथैकस्य द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि स्थितिरपरस्यान्तर्मुहूर्त्तं मासो वर्षं वर्षसहस्रं वा, अन्तर्मुहूर्त्तादिकं (च) नियतपरिमाणया संख्यया गुणितद्वाविंशतिवर्षसहस्रप्रमाणं भवति तेनान्तर्मुहूर्त्तादिप्रमाणस्थितिकः परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकापेक्षया संख्येयगुणहीनः तदपेक्षया तु परिपूर्णद्वाविंशतिवर्षसहस्रस्थितिकः संख्येयगुणाभ्यधिकः, एवमप्कायिकादीनामपि चतुरिन्द्रियपर्यन्तानां स्वस्वोत्कृष्टस्थित्यनुसारेण स्थित्या त्रिस्थानपतितत्वं भावनीयम् । तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां मनुष्याणां च चतुःस्थानपतितत्वं, तेषां ह्युत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि

स्थिति, पल्योपमं चासंख्येयवर्षसहस्रप्रमाणमतोऽसंख्येयगुणवृद्धिहान्योरपिसंभवादुपपद्यते चतुःस्थानपतितत्वं, एवं व्यन्तराणामपि तेषां जघन्यतो दशवर्षसहस्रस्थितिकत्वादुत्कर्षत पल्योपमस्थितत्वा (ते), ज्योतिष्कवैमानिकानां पुनः स्थित्या त्रिस्थानपतितत्वं, यतो ज्योतिष्काणां जघन्यमायु पल्योपमाष्टभाग उत्कृष्टं वर्षलक्षाधिकं पल्योपमं, वैमानिकानां जघन्यं पल्योपमम उत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, दशकोटीकोटीसंख्येयपल्योपमप्रमाणं च सागरोपममतस्तेषामप्यसंख्येयगुणवृद्धिहान्यसंभावात् स्थितिस्त्रिस्थानपतिता, शेषसूत्रभावना तु सुगमत्वात् स्वयं भावनीया ॥ तदेवं सामान्यतो नैरयिकादीनां प्रत्येकं पर्यायानन्त्यं प्रतिपादितं, इदानीं जघन्याद्यवगाहनाद्यधिकृत्य तेषामेव प्रत्येकं पर्यायाग्रं प्रतिपिपादयिषुराह—

मूलम्—जहन्नोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणए नेरइए जहन्नोगाहणस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए उक्कोसोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया

पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ उक्कोसोगाहणयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! उक्कोसोगाहणए नेरइए उक्कोसोगाहणस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभागअब्भहिए वा संखिज्जभागअब्भहिए वा, वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहि तिहिं दंसणेहि छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाणं नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा !, अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए नेरइए अजहन्नमणुक्कोसोगाहणस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सियहीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जभाग-

अब्भहिए वा संखिज्जभागअब्भहिए वा संखिज्ज-
गुणअब्भहिए वा असंखिज्जगुणअब्भहिए वा,
ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सियअब्भहिए, जइ हीणे
असंखिज्जभागहीणे वा संखिज्जभागहीणे वा सं-
खिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा अह
अब्भहिए असंखिज्जभागअब्भहिए वा संखिज्ज-
भागअब्भहिए वा संखिज्जगुणअब्भहिए वा असं-
खिज्जगुणअब्भहिए वा वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं
तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं
छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा !, एवं
वुच्चइ--अजहन्नमणुक्कोसोगाहणाणं नेरइयाणं
अणंता पज्जवा पन्नत्ता। जहन्नठिइयाणं भंते !
नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ
जहन्नठिइयाण नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?,
गोयमा ! जहन्नठिइए नेरइए जहन्नठिइयस्स नेर-
इयस्स दव्वट्ठयाए तुल्लेपएसट्ठयाए तुल्ले ओगा-
हणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंध-
रसफासपज्जवेहि तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं
दंसणेहिं छट्ठाणवडिए एवं उक्कोसठिइए वि,

अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि, नवरं सट्ठानेचउट्ठाण-वडिए। जहन्नगुणकालगाणं भंते! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-जहन्नगुणकालगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नगुणकालए नेरइए जहन्न-गुणकालगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिइए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्न-गंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ जहन्नगुणकालगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता,

एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुण-कालएवि एवं चेव नवरं कालवन्नपज्जवेहिं छट्ठाण-वडिए, एवं अवसेसा चत्तारि वन्ना दो गंधा पंच-रसा अट्ठफासा भाणियव्वा। जहन्नाभिणिबोहियना-णीणं भंते! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं नेरइयाणं अणंता

पज्जवा पन्नत्ता ?; गोयमा ! जहन्नाभिणिबोहियनाणी नेरइए जहन्नाभिणिबोहियस्स नाणिस्स नेरइयस्स- दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहण- ट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए आभिणि- बोहियनाणपज्जवेहि तुल्ले सुयनाण० ओहिनाण- पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए तिहिं दंसणेहिं छट्ठाण- वडिए, एवं उक्कोसाभिणिबोहियनाणीवि, अज- हन्नमणुक्कोसभिणिबोहियनाणीवि एवं चेव, णवरं अभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणी ओहिनाणीवि, नवरं जस्स नाणा- तस्स अन्नाणा नत्थि, जहा नाणा तहा अन्नाणावि भाणियव्वा, नवरं जस्स अन्नाणा तस्स नाणा न भवंति। जहन्नचक्खुदंसणीणं भंते! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नचक्खुदंसणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नचक्खुदंसणीणं नेरइए जहन्नचक्खुदंसणिस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-

वडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास पज्ज-वेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं छट्ठाणवडिए चक्खुदंसणपज्जवेहिं तुल्ले अचक्खुदसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोस-चक्खुदंसणीवि, अजहन्नमणुक्कोसचक्खुदंसणीवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं अचक्खु-दंसणीवि ओहिदंसणीवि। (सूत्र ११९) ॥

टीका— जहन्नोगाहणाणं भंते !' इत्यादि, सुगमं नवरं 'ठिईए चउट्ठाणवडिए' इति जघन्यावगाहनो हि दशवर्षसहस्र-स्थितिकोऽपि भवति रत्नप्रभायां उत्कृष्टस्थितिकोऽपि सप्तमनरक-पृथिव्यां, तत उत्पन्ने स्थित्या चतु स्थानपतितता, 'तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं'ति इह यदा गर्भव्युत्क्रान्तिकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियो नरके-पूत्पद्यते तदा स नारकायु संवेदनप्रथमसमय एव पूर्वगृहीतौदारिक-शरीरपरिशाटं करोति तस्मिन्नेव समये सम्यग्दृष्टेस्त्रीणि ज्ञानानि मिथ्यादृष्टेस्त्रीण्यज्ञानानि समुत्पद्यन्ते, ततोऽविग्रहेण विग्रहेण वा गत्वा वैक्रियशरीरसंघातं करोति, यस्तु संमूर्च्छिमासंज्ञिपञ्चेन्द्रियो नरकेपूत्पद्यते तस्य तदानीं विभंगज्ञानं नास्तीति जघन्यावगाहन-स्यास्याज्ञानानि भजनयाऽऽद्यत्रयानि द्वे त्रीणि वेति, उत्कृष्टावगाहन-सूत्रे स्थित्या हानौ वृद्धौ च द्विस्थानपतितत्वं तद्यथा—असंख्येय-भागहीनत्वं वा संख्येयभागहीनत्वं वा, तथा असंख्येयभागाधिक-

त्वं वा सङ्ख्येयभागाधिकत्वं वा न तु सङ्ख्येयासङ्ख्येयगुणवृद्धिहानी, कस्मादिति चेन, उच्यते, उत्कृष्टावगाहना हि नैरयिका पञ्चधनु-शतप्रमाणा, ते च सप्तमनरकपृथव्या, तत्र जघन्या स्थिति द्वाविंशति सागरोपमाणि उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, ततोऽसंख्येयसंख्येयभागहानिवृद्धी एव घटेते न त्वसङ्ख्येयसङ्ख्येयगुणहानिवृद्धी, तेषा चोत्कृष्टावगाहनाना त्रीणि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि वा नियमाद्वेदितव्यानि, न भजनया, भजनाहेतो संमूर्च्छिमासंज्ञिपञ्चेन्द्रियोत्पादस्य तेषामसभवात, अजघन्योत्कृष्टावगाहनसूत्रे यदवगाहनया चतु स्थानपतितत्व तदेव—अजघन्योत्कृष्टावगाहनो हि सर्वजघन्याङ्गुलासंख्येयभागात्परतो मनाक् वृहत्तराङ्गुलस्या संख्येयभागादारभ्य यावदङ्गुलासङ्ख्येयभागन्यूनानि पञ्चधनु शतानि तावदवसेय, तत सामान्यनैरयिकसूत्रे इवात्राप्युपपद्यते अवगाहनातश्चतु स्थानपतितता स्थित्या चतु स्थानपतितता सुप्रतीता, दशवर्षसहस्रेभ्य आरभ्योत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणामपि तस्या लभ्यमानत्वात्, जघन्यस्थितिसूत्रे अवगाहनया चतु स्थानपतितत्व तस्यामवगाहनाया जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागादारभ्योत्कर्षत सप्तानांधनुषामवाप्यमानत्वात्. अत्रापि त्रीण्यज्ञानानि केषांचित्कादाचित्कतया द्रष्टव्यानि, संमूर्च्छिमासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्यउत्पन्नानामपर्याप्तावस्थाया विभङ्गस्याभावात्, उत्कृष्टस्थितिचिन्तायामवगाहनया चतु स्थानपतितत्वमुत्कृष्टस्थितिकस्यावगाह-

नाया जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागादारभ्योत्कर्षेण पञ्चानां धनु-शतानामवाप्यमानत्वात्, 'अजहन्नुक्कोसठिइएवि एव चेव' इत्यादि, अजघन्योत्कृष्टस्थितावपि तथा वक्तव्यं यथा जघन्यस्थिति-सूत्रे उत्कृष्टस्थितिसूत्रे च नवरमय विशेष —जघन्यस्थितिसूत्रे उत्-कृष्टस्थितिसूत्रे च स्थित्या तुल्यत्वमभिहित अत्र तु स्वस्थानेऽपि स्थितावपि चतुःस्थानपतित इति वक्तव्यं, समयाधिकदशवर्षसह-स्रेभ्य आरभ्योत्कर्षत समयोनत्रयस्त्रिशत्सागरोपमाणामवाप्य-मानत्वात्, जघन्यगुणकालकादिसूत्राणि सुप्रतीतानि नवरं 'जस्स नाणा तस्स अन्नाणा नत्थि'त्ति यस्य ज्ञानानि तस्या ज्ञानानि न संभवन्तीति यत सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानानि मिथ्यादृष्टेरज्ञानानि, सम्यग्दृष्टित्वं च मिथ्यादृष्टित्वोपमर्देन भवति मिथ्यादृष्टित्वमपि सम्यग्दृष्टित्वोपमर्देन भवति, ततो ज्ञानसद्भावेऽज्ञानाभाव एवम-ज्ञानसद्भावे ज्ञानाभाव, तत उक्त —'जहा नाणा तहा अन्नाणावि भाणियव्वा, नवर जस्स अन्नाणा तस्स अन्नाणा न सभवति' इतिशेष पाठ सिद्ध ।

मूलम्—जहन्नोगाहणगाणं भंते ! असुरकुमाणा केवइया पज्जवा पन्नता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ जहन्नोगाह-णगाणा असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणए असुरकुमारे जहन्नोगाह-

णस्स असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाईहिं छट्ठाणवडिए आभिणिबोहियनाण० सुयनाण० ओहिनाणपज्जवेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं य छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसोगाहणएवि, एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि, नवरं उक्कोसोगाहणएवि असुरकुमारे ठिईए चउट्ठाणवडिए, एव जाव थणिय कुमारा। सूत्र ११२।

सूत्रम्-जहन्नोगाहणाणं भंते! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहन्नोगाहणाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नोगाहणए पुढविकाइए जहन्नोगाहणस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोगाहणएवि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि एव चेव, नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं पुढविकाइयाणं पुच्छा गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता,

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नठिइयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नठिइए पुढविकाइए जहन्नठिइयस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहि मतिअन्नाण० सुयअन्नाण० अचक्खुदंसणपज्जवेहि छट्ठाणवडिए एवं उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव नवरं सट्ठाणे तिट्ठाणवडिए, जहन्नगुणकालयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नगुणकालयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा ! जहन्नगुणकालए पुढविकाइए जहन्नगुणकालगस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि, एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं पंच वन्ना दो गंधा पंच रसा अट्ठफासा भाणि-

यव्वा। जहन्नमतिअन्नाणीणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नमतिअन्नाणीणं पुढविकाइकाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नमतिअन्नाणी पुढविकाइए जहन्नमतिअन्नाणिस्स पुढविकायस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए मइअन्नाणपज्जवेहिं तुल्ले सुय-अन्नाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसमइअन्नाणीवि, अजहन्नमणुक्कोसमइ-अन्नाणीवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयअन्नाणीवि अचक्खुदंसणीवि एवं चेव जाव वणप्फइकाइया। (सूत्र ११३) ॥

मूलम्—जहन्नोगाहणगाणं भंते ! बेइंदियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहन्नोगाहणगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणाए बेइंदिए जहन्नोगाहणस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं दोहिं अन्ना-

णेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोगाहणएवि, णवरं णाणा णत्थि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए जहा जहन्नोगाहणए, णवरं सट्ठाणे ओगाहणाए चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं भंते! बेइंदियाणं पुच्छा गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहन्नठियाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नठिइए बेइंदिए जहन्नठिइयस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठितीए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि नवरं दो णाणा अब्भहिया, अजहन्नमणुक्कोसठिइए जहा उक्कोसठिइए णवरं ठिइए तिट्ठाणवडिए। जहन्नगुणकालगाणं बेइंदियाणं पुच्छा गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जहन्नगुणकालगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नगुणकालए बेइंदिए जहन्नगुणकालगस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए छट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं

तुल्ले अन्नसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं दोहि अन्नाणेहि अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाण वडिए एव उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि, एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं पच वन्ना दो गंधा पच रसा अट्ठफासा भाणियव्वा, जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं भंते! बेइंदियाण केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एव वुच्चइ—जहन्नाभिणिबोहियनाणीणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नाभिणिबोहियणाणी बेइंदिए जहन्नाभिणिबोहियणाणिस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए आभिणीबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए अचक्खुदंसणपज्जवेहि छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणिबोहियनाणीवि अजहन्नमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणीवि एव चेव नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणीवि सुयअन्नाणीवि अचक्खुदंसणीवि, णवरं जत्थ णाणा तत्थ अन्नाणा नत्थि जत्थ अन्नाणा तत्थ णाणा नत्थि.

जत्थ दंसणं तत्थ णाणावि अन्नाणावि, एव तेइंदियाणवि, चउरिंदियाणवि एवं चेव णवरं चक्खुदंसणं अब्भहियं (सू० ११४ ॥

सूलम्—जहन्नोगाहणगाणं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणिकाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जहन्नोगाहणगाणं पंचियितिरिक्खजोणियाण अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! जहन्नोगाहणए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नोगाहणयस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधफासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं दोहि अन्नाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, उक्कोसोगाहणएवि एव चेव णवर तिहि नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, जहा उक्कोसोगाहणए तहा अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि, णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाण भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एव वुच्चइ जहन्नठिइयाण

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नठिइए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नठिइयस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए उक्कोसठिइएवि एवं चेव णवरं दो नाणादोअन्नाणा दो दंसणा, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि, एवं चेव, नवरं ठिइए चउट्ठाणवडिए तिन्नि णाणा तिन्नि अन्नाणा तिन्नि दंसणा । जहन्नगुणकालगाणं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा गोयमा ! अनन्ता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नगुणकालए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नगुणकालगस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि, एवं चेव नवरं सट्ठाणे छट्ठाण-

वडिए, एवं पंच वन्ना दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा, जहन्नभिणिवोहियणाणीणं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? गोयमा! जहन्नाभिणिवोहियणाणिस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले अ गाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए आभिणिवोहियनोणपज्जवेहिं तुल्ले सुयनाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए चक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणिवोहियनाणीवि, णवरं ठिईए तिट्ठाणवडिए, तिन्नि नाणा तिन्नि दंसणा सट्ठाणे तुल्ले सेसेसु छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसाभिणिवोहियनाणी जहा उक्कोसाभिणिवोहियनाणी णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं सुयनाणीवि, जहन्नोहिनाणीणं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नोहिनाणी पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नोहिनाणिस्स पंचिंदियति-

रिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं आभिणिबोहिय- नाणसुयनाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए ओहिनाणपज्ज- वेहिं तुल्ले, अन्नाणा नत्थि, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं य ओहिदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसोहिनाणीवि अजहन्नो- क्कोसोहिनाणीवि एव चेव. णवरं सट्ठाणे छट्ठाण- वडिए, जहा आभिणिबोहियनाणी तहा मइअन्नाणी सुयअन्नाणी य जहा ओहिनाणी तहा विभंगना- णीवि, चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभि- णिबोहियनाणी, ओहिदंसणी जहा ओहिनाणी, जत्थ नाणा तत्थअन्नाणा नत्थि जत्थ अन्नाणा तत्थनाणा नत्थि. जत्थ दंसणा तत्थणाणावि अन्ना- णावि अत्थित्ति भाणियव्वं सू० १९४)

१९५–जहन्नोगाहणगाणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्ज- वा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–जहन्नोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणए मणूसे जहन्नोगाहणगस्स मणूसस्स-

दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं तिहिं नाणेहिं दोहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, उक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, नवरं ठिईए सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे असंखिज्जइ भागहीणे अह अब्भहिए असंखेज्जइभाग-अब्भहिए. दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा, अज-हन्नमणुक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, णवरं ओगाहण-ट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए आइ-ल्लेहिं चउहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलनाणपज्ज-वेहिं तुल्ले, तिहिं अन्नाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाण-वडिए, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले, जहन्नठिइयाणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नठिइए मणुस्से जहन्नठिइयस्स मणुस्सस्स दव्वट्ठयाए, तुल्ले पए-सट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं दोहिं अन्नाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि, नवरं दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा, अजहन्न-

इन्नुमगुक्कोमोगाहणा जहा जहन्नोगाहणए'इति, तथा जघन्य-
स्थिति सूत्रे द्वे अज्ञाने एव वक्तव्ये न तु ज्ञाने, यत सर्वजघन्य-
स्थितिको लब्ध्यपर्याप्तको भवति नच लब्ध्यपर्याप्तकेषु मध्ये
सास्वादनसम्यग्दृष्टिरुत्पद्यते, किं कारणमिति चेत, उच्यते,
लब्ध्यपर्याप्तको हि सर्वसंक्लिष्ट सास्वादनसम्यग्दृष्टिश्च मनाक्
शुभपरिणामस्ततः स तेषु मध्ये नोत्पद्यते तेनाज्ञाने एव लभ्येते न
ज्ञाने, उत्कृष्टस्थितिषु पुनर्मध्ये सासादनसम्यक्त्वसहितोऽप्युत्प-
द्यते इति तत्सूत्रे ज्ञाने अज्ञाने च वक्तव्ये, तथाचाह—'एव उक्कोस-
ठिइएवि, नवरं दो नाणा अब्भहिया' इति, एवमेवाजघन्योत्कृष्ट-
स्थितिसूत्रमपि वक्तव्य, भावसूत्राणि पाठसिद्धानि, एव त्रीन्द्रियचतु-
रिन्द्रिया अपि वक्तव्या, नवर चतुरिन्द्रियाणा चक्षुर्दर्शन मधिकं
वक्तव्य, जघन्यावगाहनतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे 'ठिईए तिट्ठाणवडिए'
अन्यथा चतुरिन्द्रियत्वायोगादिति। तेषा चक्षुर्दर्शनविषयमपि सूत्र
इति, इह तिर्यक्पचेन्द्रिय सन्ख्येयवर्षायुष्क एव जघन्यावगाहनो
भवति, नासंख्येयवर्षायुष्क, किं कारणमिति चेत्, उच्यते, असं-
ख्येयवर्षायुषो हि महाशरीरा कल्पवृक्षादिभिरिति शुभपरिणामत्वात् तुप्त्यानि प्रवन-
धातूच्चया ततस्तेरा भूयान तु स निषेको भवति तु निरेरानुसारेण
च तिर्यग्मनु याणा तुल्यो नियमेऽवगाहनेति न तेषा जघन्यावगाहना
लभ्यते किं तु संख्येयवर्षायुषा. संख्येयवर्षायुषश्च स्थित्या त्रिस्थान-
पतिता, एतच्च भावित प्राक्, तत उच्यते स्थित्या त्रिस्थानपतिता

इति, 'दोहिं नाणेहि दोहि अन्नाणेहिं' इति जघन्यावगाहनोहि तिर्यक्पञ्चेन्द्रिय संख्येयवर्षायुष्कोऽपर्याप्तो भवति सोऽपि चाल्पकायेषु मध्ये समुत्पद्यमानस्ततस्तस्यावधिविभंगज्ञानासंभवात् द्वे ज्ञाने द्वे अज्ञाने उक्ते, यस्तु विभंगज्ञानसहितो नरकादुद्वृत्य संख्येयवर्षायुष्केषु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु मध्येसमुत्पद्यमानो वक्ष्यते स महाकायेषूत्पद्यमानो द्रष्टव्य नाल्पकायेषु, तथास्वाभाव्यात्, अन्यथाऽधिकृतसूत्रविरोध उत्कृष्टावगाहनतिर्यक्पचेन्द्रियसूत्रे 'तिहिं नाणेहिं तिहिं अन्नाणेहिं' इति, त्रिभिर्ज्ञानैस्त्रिभिरज्ञानैश्च षट्स्थानपतिताः, तत्र त्रीणि अज्ञानानि कथमिति चेत्, उच्यते, इह यस्य योजनसहस्रं शरीरावगाहना स उत्कृष्टावगाहन, स च सख्येयवर्षायुष्कः एव भवति पर्याप्तश्च, तेन तस्य त्रीणि ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि च सम्भवन्ति, स्थित्याऽपि चासावुत्कृष्टावगाहन त्रिस्थानपतितः, संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, अजघन्योत्कृष्टावगाहनसूत्रे स्थित्या चतुस्थानपतित., यतोऽजघन्योत्कृष्टावगाहनोऽसंख्येयवर्षायुष्कोऽपि लभ्यते, ततोपपद्यते प्रागुक्तयुक्त्या चतुस्थानपतितत्वं, जघन्यस्थितिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे द्वे अज्ञाने एव वक्तव्ये न तु ज्ञाने, यतोऽसौ जघन्यस्थितिको लब्ध्यपर्याप्तक एव भवति न च तन्मध्ये सासादनसम्यक्त्वं प्राप्नोति इति, उत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्रे 'दो नाणा दो अन्नाणा' इति उत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पञ्चेन्द्रिय-

स्त्रिपल्योपमस्थितिको भवति, तस्य च द्वे अज्ञाने तावन्नियमेन यदा पुन. पल्यमासावशेषायुर्वैमानिकेषु बद्धायुष्को भवति तदा तस्य द्वे ज्ञाने लभ्येते अत उक्तं द्वे ज्ञाने द्वे अज्ञाने इति, अजघन्योत्कृष्ट-स्थितिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियसूत्र 'ठिइए चउट्ठाणवडिए' इति, अजघन्योत्कृष्टस्थितिको हि तिर्यक्पंचेन्द्रिय संख्येयवर्षायुष्कोऽपि लभ्यते, असंख्येयवर्षायुष्कोऽपि समयोनत्रिपल्योपमस्थितिक ततश्चतु स्थानपतित, जघन्याभिनिबोधिकतिर्यक्पंचेन्द्रियसूत्रे 'ठिईए चउट्ठाणवडिए' इति, असंख्येयवर्षायुषोऽपि हि तिर्यक्पंचेन्द्रियस्य स्वभूमिकानुसारेण जघन्ये अभिनिबोधिकश्रुतज्ञाने लभ्येते तत संख्येयवर्षायुषोऽसंख्येयवर्षायुषश्च जघन्याभिनिबोधिकश्रुत ज्ञान-सम्भवाद् भवन्ति स्थित्या चतु स्थानपतिता, उत्कृष्टाभिनिबोधिक-ज्ञानसूत्रे स्थित्या च त्रिस्थानपतिता वक्तव्या, यत इह यस्योत्कृष्टे आभिनिबोधिकश्रुतज्ञाने स नियमात संख्येयवर्षायुष्क संख्येय-वर्षायुष्कश्च स्थित्याऽपि त्रिस्थानपतित एव यथोक्तं प्राक्, अवधि-सूत्रे विभंगसूत्रेऽपि स्थित्या त्रिस्थानपतित, कि कारणमिति चेत उच्यते, असंख्येयवर्षायुषोऽवधिविभंगासंभवात, आह च—मूलटीकाकार 'ओहिविभंगेसु नियमा तिट्ठाणवडिए, किं कारण ? भन्नइ, ओहिविभंगा असंखेज्जवासाउयस्स नत्थि' त्ति, जघन्याव-गाहनमनुष्यसूत्रे 'ठिईए तिट्ठाणवडिए' इति, तिर्यक्पंचेन्द्रियवन मनुष्योऽपि जघन्यावगाहनो नियमात् संख्येयवर्षायुष्क . संख्येय-

वर्षायुष्कश्च स्थित्या त्रिस्थानपतित एवेति 'तिहिं नाणेहिं' इति, यदा कश्चित् तीर्थंकरोऽनुत्तरोपपातिकदेवो वा अप्रतिपतितेनावधिज्ञानेन जघन्यायामवगाहनायामुत्पद्यते तदाऽवधिज्ञानमपि लभ्यते इतीह त्रिभिर्ज्ञानैरित्युक्तं, विभङ्गज्ञानसहितस्तु नरकादुद्वृत्तो जघन्यायामवगाहनायां नोत्पद्यते तथास्वाभाव्यात् अतो विभङ्गज्ञानं न लभ्यते इति द्वाभ्यामज्ञानाभ्यामित्युक्तं, उत्कृष्टावगाहनमनुष्यसूत्रे 'ठिईए सिय हीणे सियतुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखेज्जभागहीणे जइ अब्भहिए असंखेज्जभागअब्भहिए' इति उत्कृष्टावगाहना हि मनुष्यास्त्रिगव्युतोच्छ्रया· त्रिगव्युतानां च स्थितिर्जघन्यत· पल्योपमासंख्येयभागहीनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतस्तान्येव परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि उक्तं च जीवाभिगमे—'उत्तरकुरुदेवकुराएमणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइं' पलिओवमस्स असंखिज्जइभागहीणाइं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं' त्रिपल्योपमासंख्येयभागश्च त्रयाणां पल्योपमानामसंख्येयतमो भाग इति पल्योपमासंख्येयभागहीनपल्योपमत्रयस्थितिकः परिपूर्णपल्योपमत्रयस्थितिकापेक्षयाऽसंख्येयभागहीन , इतरस्तु तदपेक्षया ऽसंख्येयभागाधिक शेषा वृद्धिहान्योर्न लभ्यन्ते , 'दो नाणा दो अन्नाणा' इति, उत्कृष्टावगाहना हि असंख्येयवर्षायुष असंख्येयवर्षायुषां चावधिविभंगासंभव , तथास्वाभाव्यात् अतो द्वे ज्ञाने द्वे अज्ञाने इति, तथा ऽजघन्योत्कृष्टावगाहन संख्येयवर्षा-

जहन्नाभिणिबोहियणाणी मणूसे जहन्नाभिणिबोहिया-णाणिस्स मणुस्ससस दव्वटठयाए तुल्ले पएसटठ-याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउटठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफासपज्जवेहि छट्ठाणवडि-ए आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं तुल्ले सुयनाणपज्ज-वेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणि-बोहियनाणीवि नवरं आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं तुल्ले ठिईए तिट्ठाणवडिए तिहिं नाणेहिं तिहिं दंसणे-हि छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसाभिणिबोहियनाणीं जहा उक्कोसाभिणिबोहियनाणी, नवरं ठिईए चउ-ट्ठाणवडिए सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एव सुयनाणीवि, जहन्नोहिनाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता ?, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नोहि-नाणी मणुस्से जहन्नोहिनाणिस्स मणूसस्स दव्वटठ-याए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए ठिईए तिट्ठाणवडिए वन्नगंधरसफास-पज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए ओहिनाणपज्ज-वेहिं तुल्ले मणनाणपज्जवेहि छट्ठाणवडिए तिहिं दंस-णेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसोहिनाणीवि, अजहन्न-

मूलम्–वाणमंतरा जहा असुरकुमारा। एवं जोइसियवेमाणिया, नवरं सट्टाणे ठिइए तिट्ठाणवडिए भाणियव्वे, सेत्तं जीवपज्जवा। (सूत्र ११७)॥

टीका–एवमसुरकुमारादिसूत्राण्यपि भावनीयानि प्राय समानगमत्वात्, जघन्यावगाहनादिपृथिव्यादि सूत्रे स्थित्या त्रिस्थानपतितत्वं संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, एतच्च प्रागेव सामान्यपृथिवीकायिकसूत्रे भावितं, पर्यायचिन्तायामज्ञाने एव मत्यज्ञानश्रुताज्ञानलक्षणे वक्तव्ये न तु ज्ञाने, तेषां सम्यक्त्वस्य तेषु मध्ये सम्यक्त्वसहितस्य चोत्पादासंभवात् 'उभयाभावो पुढवाइएसु' इति वचनाद् अत एवैतदेवोक्तमत्र 'दोहि अन्नाणेहिं' इति जघन्यावगाहनद्वीन्द्रियसूत्रे 'दोहिं नाणेहि दोहिं अन्नाणेहिं' इति द्वीन्द्रियाणां हि केषांचिदपर्याप्तावस्थाया सास्वादनसम्यक्त्वमवाप्यते सम्यग्दृष्टेश्च ज्ञाने इति द्वे ज्ञाने लभ्येते शेषाणामज्ञाने तत उक्तं द्वाभ्यां ज्ञानाभ्यां द्वाभ्यामज्ञानाभ्यामिति, उत्कृष्टावगाहनायां त्वपर्याप्तावस्थाया अभावात् सास्वादनसम्यक्त्वं नावाप्यते ततस्तत्र ज्ञाने न वक्तव्ये, तथाचाह—'एवं उक्कोसिनोगाहणाए वि नवरं नाणा नत्थि' त्ति, तथा ऽजघन्योत्कृष्टावगाहना किल प्रथमसमयादूर्ध्वं भवति—इत्यपर्याप्तावस्थायामपि, तस्या सम्भवात् सास्वादनसम्यक्त्ववर्ता ज्ञाने अन्येषा चाज्ञाने इति ज्ञाने चाज्ञाने च वक्तव्ये तथाचाह,—'अज-

गुणकोऽपि भवति असंख्येयवर्णगुणकोऽपि भवति, असंख्येयवर्णगुणको-
ऽपि गर्भव्युत्क्रान्तिकत्वात् तथाऽवगाहनतयाऽपि चतुःस्थानपतितत्व
मन्यत्राऽपि तथा, आद्यैश्चतुर्भिर्ज्ञानैश्चावधिमनःपर्यवरूपैर्ज्ञानैः
षट्स्थानपतिता, तेषां चतुर्णामपि ज्ञानानां तत्तद्द्रव्यादिसापेक्षतया
क्षयोपशमवैचित्र्यतस्तारतम्यभावात्, केवलज्ञानपर्यवैस्तुल्यता,
निःशेषस्वावरणक्षयतः प्रादुर्भूतस्य केवलज्ञानस्य भेदाभावात्,
एवं सूत्रम्, जघन्यस्थितिकमनुष्यसूत्रे 'दोहिं अन्नाणेहिं' इति द्वाभ्या-
मज्ञानाभ्यां मत्यज्ञानश्रुताज्ञानरूपाभ्यां षट्स्थानपतितता वक्तव्या,
न तु ज्ञानाभ्यां कस्मादिति चेत् ? उच्यते, जघन्यस्थितिका
मनुष्याः संमूर्छिमाः, संमूर्छिममनुष्याश्च नियमतो मिथ्यादृष्टय,
ततस्तेषामज्ञाने, एव न तु ज्ञाने उत्कृष्टस्थितिकसूत्रे 'दो नाणा दो
अन्नाणा' इति, उत्कृष्टस्थितिका हि मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुष्काः, तेषां च
नावश्यानि नियमेन यत एते पल्योपमावशेषायुषो [illegible]
[illegible] द्वे ज्ञाने [illegible]
[illegible] इति द्वे ज्ञाने [illegible] इतिनोक्तम्,

तत शेषज्ञानदर्शनासम्भवादाभिनिबोधिकज्ञानपर्यवैस्तुल्य श्रुतज्ञान-पर्ययैर्द्वाभ्यां दर्शनाभ्यां च षट्स्थानपतितोक्ता, उत्कृष्टाभिनिबोधिकसूत्रे 'ठिईए तिट्ठाणवडिए' इति उत्कृष्टाभिनिबोधिको हि नियमात् संख्येयवर्षायु, असंख्येयवर्षायुष तथाभवस्वाभाव्यात् सर्वोत्कृष्टाभिनिबोधिकज्ञानासंभवात्, संख्येयवर्षायुषश्च प्रागुक्तयुक्ते स्थित्या त्रिस्थानपतिता इति, जघन्यावधिसूत्रे उत्कृष्टावधिसूत्रे चावगाहनया त्रिस्थानपतितो वक्तव्य', यत सर्वजघन्योऽवधिर्यथोक्तस्वरूपो मनुष्याणा पारभविको न भवति, किन्तु तद्भवभावी, सोऽपि च पर्याप्तावस्थायां, अपर्याप्तावस्थायां तद्योग्यविशुद्ध्यभावात्, उत्कृष्टोऽप्यवधिर्भावतश्चारित्रिण, ततो जघन्यावधिरुत्कृष्टावधिर्वाऽवगाहनयात्रिस्थानपतित:, अजघन्योत्कृष्टस्त्ववधि पारभविकोऽपि संभवति ततोऽपर्याप्तावस्थायामपि तस्य संभवात् अजघन्योत्कृष्टावधिरवगाहनया चतु स्थानपतित, स्थित्या तु जघन्यावधिरुत्कृष्टावधिरजघन्योत्कृष्टावधिर्वा त्रिस्थानपतित, असंख्येयवर्षायुषामवधेरसम्भवात, संख्येयवर्षायुषा च त्रिस्थानपतितत्वात्, जघन्यमन: पर्यवज्ञानी उत्कृष्टमन पर्यवज्ञानी अजघन्योत्कृष्टमन पर्यवज्ञानी च स्थित्या त्रिस्थानपतित, चारित्रिणामेव मन पर्याय ज्ञानसद्भावात्, चारित्रिणा च संख्येयवर्षायुष्कत्वात्, केवलज्ञानसूत्रे तु 'ओगाहणट्ठया चउट्ठाणवडिए' इति केवलसमुद्घातं प्रतीत्य, तथाहि—केवलिसमुद्घातगत. केवली शेषकेवलिभ्योऽसंख्येयगुणाधिकाव-

गाहन, तदपेक्षया शेषा केवलिनोऽसख्येयगुणहीनावगाहना, स्वस्थाने तु शेषा केवलिनस्त्रिस्थानपतिता इति स्थित्या त्रिस्थान-पतित, सख्येयवर्षायुष्कत्वात् ॥ व्यन्तरा यथाऽसुरकुमारा, ज्योतिष्कवैमानिका अपि तथैव, नवर ते स्थित्या त्रिस्थानपतिता वक्तव्या, एतच्च प्रागेव भावितं । उपसंहारमाह—[ग्रन्थाग्र ५०००] 'सेत्त जीवपज्जवा' एते जीवपर्याया । सम्प्रत्यजीवपर्यायान् पृच्छति—

मूलम्—अजीवपज्जवा णं भंते! कइविहा पन्नत्ता ?, गोयमा! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा-रूविअजीवपज्जवा य अरूविअजीवपज्जवा य, अरूविअजीवपज्जवा णं भंते! कइविहा पन्नत्ता ?, गोयमा! दशविहा पन्नत्ता, तंजहा-धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थिकायस्सपएसा अहम्मत्थिकाए अहम्मत्थिकायस्स देसे अहम्मत्थिकायस्स पएसा आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसे आगासत्थिकायस्स पएसा अद्धासमए सूत्र (११८)

मूलम्-रूविअजीवपज्जवा णं भंते! कइविहा पन्नत्ता ?, गोयमा! चउविहा पन्नत्ता, तंजहा-खंधा खंधदेसा खंधपएसा परमाणुपुग्गला, तेणं भंते! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?, गोयमा! नो संखेज्जा नो

संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ-नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता?, गोयमा! अणंता परमाणुपुग्गला अणंता दुपएसिया खंधा जाव अणंता दसपएसिया खंधा अणंता संखिज्जपएसिया खंधा अणंता असंखिज्जपएसिया खंधा अणंता अणंतपएसिया खंधा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ ते णं नो संखिज्जा नो असंखिज्जा अणंता। सूत्र ११६)

मूलम् परमाणुपोग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ-परमाणुपुग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! परमाणुपुग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे असंखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइगुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा अह अब्भहिए असंखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइभागअब्भहिए वा संखिज्जइगुणअब्भहिए वा असंखिज्जइगुणअब्भहिए वा, कालवण्णपज्जवेहिं सिय

हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे अणंत-
भागहीणे वा असंखिज्जइभागहीणे वा संखिज्जइ-
भागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा असंखिज्जगुण-
हीणे वा अणंतगुणहीणे वा अह अब्भहिए अणंत-
भागअब्भहिए वा असंखिज्जइभागअब्भहिए वा सं-
खिज्जभागअब्भहिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा एवं
अवसेसवन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए फासाणं
सियउसिणनिद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं
गोयमा ! एवं वुच्चइ-परमाणुपोग्गलाणं अणंता
पज्जवा पन्नत्ता दुपएसियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता ?, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?,
गोयम ! दुपएसिए दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय
तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह
अब्भहिए पएसमब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए
वन्नाईहिं उवरिल्लेहिं चउफासेहिं य छट्ठाणवडिए, एवं
तिपएसेवि, नवरं ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय
तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे वा दुप-
एसोहीणे वा, अह अब्भहिए पएसमब्भहिए वा

दुपएसमब्भहिए वा, एवं जाव दसपएसिए, नवरं ओगाहणाए पएमपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपए- सिए, णवरं नवपएसहीणत्ति, संखेज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमा ! संखेज्जपएसिए संखेज्ज- पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे सखेज्ज- भागहीणे वा संखिज्जगुणहीणे वा अह अब्भहिए एवं चेव ओगाहणट्ठयाए वि दुट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउवरिल्लचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, असखिज्जपएसियाण पुच्छा गोयमा ! अणता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमा ! असंखिज्जपएसिए खंधे असंखिज्ज- पएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए चउ- ट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइउवरिल्ल चउफासेहि य छट्ठाण- वडिए, अणंतपएसियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! अणंतपएसिए खंधे अणंतपएसियस्स खंध-

स्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगा-
हणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्न-
गंधरसफासपज्जवेहि छट्ठाणवडिए ॥ एगपएसोगा-
ढाण पोग्गलाण पुच्छा, गोयमा ! अणता पज्जवा
पन्नत्ता, से केणटठेणं भते ? एव वुच्चइ ?, गोयमा !
एगपएसोगाढे पोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स
दव्वट्ठयाएतुल्ले पएसट्ठया छट्ठाणवडिए ओगाहण-
ट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउटठाणवडिए वरणाइउव-
रिल्लचउफासेहिं छट्ठाणवडिए, एवं दुपएसोगाहेवि,
संखिज्जपएसोगाढाणं पुच्छा गोयमा ! अणता पज्जवा
पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा !
संखेज्जपएसोगाढे पोग्गले संखिज्जपएसोगाढस्स
पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाण-
वडिए आगाहणट्ठयाए दुटठाणवडिए ठिईए चउट्ठाण-
वडिए वरणाइउवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए,
असंखेज्जपएसोगाढाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणटठेण भते ! एवं वुच्चइ ?,
गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढे पोग्गले असंखेज्जपए-
सोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-
याए छटठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए

ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइअट्ठफासेहिं छट्ठाण-
वडिए। एगसमयठियाणं पुच्छा गोयमा! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण भंते! एव वुच्चइ?,
गोयमा! एगसमयठिइए पोग्गले एगसमयठियस्स
पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाण-
वडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडितेठितीए तुल्ले
वण्णाइअट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए एवं जाव दस-
समयठिइए, संखेज्जसमयठिइयाणं एवं चेव, णवरं
ठिईए दुट्ठाणवडिए, असंखेज्जसमयठिइयाणं एवं चेव,
नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, एकगुणकालगाण
पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केण-
ट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! एकगुणकालए
पोग्गले एकगुणकालगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउ-
ट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्ज-
वेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहिं छट्ठा-
णवडिए अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए, एवं जाव दसगुण-
कालए, संखेज्जगुणकालएवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे
दुट्ठाणवडिए, एवं असंखेज्जगुणकालएवि नवरं
सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए, एवं अणंतगुणकालएवि नवरं

पुच्छा, गोयमा ! जहा जहन्नोगाहणए दुपएसिए तहा जहन्नोगाहणए चउप्पएसिए एवं जहा उक्कोसो-गाहणए दुपएसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पए-सिएवि, एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि चउ-प्पएसिए, णवरं ओगाहणट्ठाए सिय हीणे सिय तुल्ले सियमब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भ-हिए पएसअब्भहिए एवं जाव दसपएसिए णेयव्वं, णवरं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपएसियस्स सत्त पएसा परिवड्ढि-ज्जति, जहन्नोगाहणगाणं भंते ! संखिज्जपएपएसि-याणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नो-गाहणए संखेज्जपएसिए जहन्नोगाहणगस्स संखि-ज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाण-वडिए वण्णाइचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए एवं उक्कोसोगाहणएवि, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणएवि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिए, जहन्नोगाहण-गाणं भंते ! असंखिज्जपएसियाण पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं

पएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ-अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं भंते! परमाणुपुग्गलाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एव वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नठिइए परमाणुपोग्गले जहन्नठियस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए तुल्ले वण्णाइ दुफासेहि य छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइए वि एव चेव नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं दुपएसियाण पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ ?, गोयमा! जहन्नठिइए दुपएसिए जहन्नठिइयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भहिए पएसअब्भहिए ठिईए तुल्ले वण्णाइ चउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव,

नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, एवं जाव दसपएसिए, नवरं पएसपरिवुड्ढी कायव्वा, ओगाहणट्ठयाए तिसुवि गमएसु जाव दसपएसिए एवं पएसा परिवड्ढिज्जंति, जहन्नठिइयाणं भंते ! संखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए संखिज्जपएसिए खंधे जहन्नठिइयस्स संखिज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वण्णाइ चउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव, नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नठिइए असंखिज्जपएसिए जहन्नठिइयस्स असंखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसठिइएवि अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि, एव चेव नवर ठिईए चउट्ठाणवडिए,

जहन्नठिइयाणं अणंतपएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंत पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नठिइए अणंतपएसिए जहन्न-ठिइयस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पए-सट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-वडिए ठिईए तुल्ले वण्णाइ अट्ठफासे हि य छट्ठाण-वडिए, एवं उक्कोस विठइएवि, अजहन्नमणुक्कोस-ठिइएवि एवं चेव, नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए जहन्नगुणकालयाण परमाणुपुग्गलाणं पुच्छा, गोयमा!, अणंत पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नगुणकालए परमाणुपुग्गले जहन्नगुणकालगस्स परमाणुपुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसा वण्णा नत्थि, गंधरसफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, एवमजहन्नमणुक्कोस-गुणकालएवि, णवरं सट्ठाणेछट्ठाणवडिए, जहन्नगुण-कालयाणं भंते! दुपएसियाण पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एव

भंते! असंखिज्जपएमियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणटठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नगुणकालए असंखिज्जपएसिए जहन्नगणकालगस्स असंखिज्जपएमियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाण-वडिए कालवन्नपज्जवेहि तुल्ले अवसेसेहिं वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्न-मणुक्कोमगणकालएवि एव चेव, नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगणकालयाणं भंते! अणंतपए-मियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता से केणटठेणं भंते! एव वुच्चइ?, गोयमा! जहन्न-गुणकालए अणंतपएमिए जहन्नगणकालयस्स अणंत-पएमियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएमटठयाए छट्ठाण-वडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउ-ट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहि तुल्ले अवसेसेहिं वन्नादि अटठफासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोमगुणकालएवि अजहन्नमणुक्कोमगुणकालएवि, एव चेव, नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिए एवं नीललोहियहालिद्दसुक्किल्ल-सुब्भिगंधदुब्भिगंधतित्तकडुकसायअंबिलमहुररस पज्ज-

सेहि य वत्तव्वं गां भाणियव्वा, नवर परमाणुपोग्गलस्स
दुब्भिगंधस्स दुब्भिगंधो न भएणइ दुब्भिगंधस्स
सुब्भिगंधो न भएणइ तित्तस्स अवसेसे न भएणंति
एवं कडुयादीणवि, अवसेसं त चेव, जहन्नगुणक-
क्खडाणं अणतपएसियाण खंधाणं पुच्छा, गोयमा !
अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं
वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नगुणकक्खडे अणंतपएसिए
जहन्नगुणकक्खडस्स अणतपएसियस्स दव्वट्ठयाए
तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए
चउट्ठाण वडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसेहिं
छट्ठाणवडिए कक्खडफासपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं
सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकक्ख-
डेवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकक्खडेवि एवं चेव, नवरं
सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एव मउयगुरुयलहुएवि भाणि-
यव्वे, जहन्नगु सीयाणं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं
पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केण-
ट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जहन्नगुणसीए
परमाणुपोग्गले जहन्नगुणसीतस्स परमाणुपुग्गलस्स
दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठ-

याए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसेहिं छट्ठाण-वडिए सीयफासपज्जवेहि य तुल्ले उसिणफासो न भण्णति निद्धलक्खफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए एव चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसीताणं दुपदेसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नगुणसीते दुपएसिए जहन्नगुणसीतस्स दुपदे-सियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहण-ट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे (अह) अब्भहिए पएसअब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्धलुक्खफासपज्ज-वेहिं छट्ठाणवडिए, एव उक्कोसगुणसीतेवि, अजहन्न-मणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाण-वडिए, एवं जाव दसपएसिए, णवरं ओगाहणट्ठ-याए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा, जाव दसपएसियस्स नवपएसा वुड्ढिज्जंति, जहन्नगुणसीयाणं संखेज्जपए-सियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्न-गुणसीते संखिज्जपएसिए जहन्नगुणसीतस्स संखि-

ज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए
दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए
चउट्ठाणवडिए वण्णादीहिं छट्ठाणवडिए सीयफास-
पज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए
एवं उक्कोसगुणसीतेवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि
एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसी-
याणं असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?
गोयमा! जहन्नगुणसीते असंखिज्जपएसिए जहन्न-
गुणसीयस्स असंखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
पएसियाए चउट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-
वडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ पज्जवेहिं
छट्ठाणवडिए सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्ध-
लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुण-
सीतेवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, न-
वरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसीताणं अणन्त-
पएसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता! पज्जवा
पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा!
जहन्नगुणसीते अणंतपएसिए जहन्नगुणसीतस्स अणंत-
पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठा-

याए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसेहि छट्ठाण-वडिए सीयफासपज्जवेहि य तुल्ले उसिणफासो न भणति निद्धलक्खफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसीताणं दुपदेसियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नगुणसीते दुपएसिए जहन्नगुणसीतस्स दुपदे-सियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए जइ हीणे पएसहीणे (अह) अब्भहिए पएसअब्भहिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्धलुक्खफासपज्ज-वेहि छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणसीतेवि, अजहन्न-मणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाण-वडिए, एवं जाव दसपएसिए, णवरं ओगाहणट्ठ-याए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा, जाव दसपएसियस्स नवपएसा वुड्ढिज्जंति, जहन्नगुणसीयाणं संखेज्जपए-सियाणं पुच्छा, गोयमा! अणंता पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्न-गुणसीते संखिज्जपएसिए जहन्नगुणसीतस्स संखि-

उज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए
दुट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए ठिईए
चउट्ठाणवडिए वण्णादीहिं छट्ठाणवडिए सीयफास-
पज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए,
एवं उक्कोसगुणसीतेवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि
एव चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसी-
याणं असंखिज्जपएसियाणं पुच्छा गोयमा ! अणंता
पज्जवा पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?,
गोयमा ! जहन्नगुणसीते असंखिज्जपएसिए जहन्न-
गुणसीयस्स असंखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले
पएसियाए चउट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-
वडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ पज्जवेहिं
छट्ठाणवडिए सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले उसिणनिद्ध
लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुण-
सीतेवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, न-
वरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, जहन्नगुणसीताणं अणंत-
पएसियाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता पज्जवा
पन्नत्ता, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा !
जहन्नगुणसीते अणंतपएसिए जहन्नगुणसीतस्स अणं-
तपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठा-

वडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुण-सीतेवि अजहन्नमणुक्कोसगुणसीतेवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं उसिणनिद्धलक्खे जहा सीते परमाणुपोग्गलस्स तहेव पडिवक्खो सव्वेसिं न भण्णइ त्ति भाणियव्वं ॥ सूत्र १२०)

(मम्- साम्प्रत सामान्यसूत्रमारभ्यते) जहन्नपएसियाणं भंते! खंधाण पुच्छा, गोयमा! अणंता, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! जहन्नपएसिए खंधे जहन्नपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठ-याए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए, जइ हीणे पएसहीणे अह अब्भहिए पएसमब्भहिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए वन्नगंधरस-सित्तचउफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए उक्कोस-पएसियाणं भंते! खंधाण पुच्छा, गोयमा! अणंता०, केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?, गोयमा! उक्कोसपएसिए खंधे उक्कोसपएसियस्स खंधस्स

दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, अजहन्नमणुक्कोसपएसियाणं भंते ! खंधाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता, गोयमा ! अणंता०, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसपएसिए खंधे जहन्नमणुक्कोसपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए ! जहन्नोगाहणगाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता०, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! जहन्नोगाहणए पोग्गले जहन्नोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए तुल्ले ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिए, उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, नवरं ठिईए तुल्ले, अजहन्नमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा, गोयमा ! अणंता०, से केणट्ठेणं० ?, गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए पोग्गले अजहन्नमणुक्कोसोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठा-

वडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाइ अट्ठफास-पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, जहन्नठिइयाणं भंते! पोग्गलाणं पुच्छा. गोयमा! अणंता०, से केणट्ठेणं गोयमा! जहन्नठिइए पोग्गले जहन्नठिइयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए तुल्ले वण्णाई अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसठिइएवि, अजहन्नमणुक्कोसठिइएवि एवं चेव, नवरं ठिइएवि चउट्ठाणवडिए, जहन्नगुणकालयाणं भंते! पोग्गलाणं केवइया पज्जवा पन्नत्ता?, गोयमा! अणंता०, से केणट्ठेणं?, गोयमा! जहन्नगुणकालए पोग्गले जहन्नगुणकालयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए कालवन्नपज्जवेहिं तुल्ले अवसेसेहिं वन्नगंधरसफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जहन्नगुणकालयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पन्नत्ता, एवं उक्कोसगुणकालएवि, अजहन्नमणुक्कोसगुणकालएवि एवं चेव, नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए, एवं जहं

'ते णं भंते ! किं संखेज्जा' इत्यादि, ते स्कन्धादय प्रत्येकं किं संख्येया असंख्येया अनन्ता भगवानाह—अनन्ताः, एतदेव भावयति—' केणट्ठेणं भंते ! इत्यादि पाठसिद्ध। सम्प्रतिदण्डकक्रमेण परमाणुपुद्गलादीनां पर्यायाश्चिन्तनीयाः, दण्डकक्रमश्चाय—प्रथमत सामान्येन परमाण्वादयश्चिन्तनीया तदनन्तर ते एव एकप्रदेशाद्यवगाढा तत एक समयादिस्थितिका तदनन्तरमेकमेकगुणकालकादय ततो जघन्याद्यवगाहनाप्रकारेण तदनन्तरं जघन्यस्थित्यादिभेदेन ततो जघन्यगुणकालकादिक्रमेण तदनन्तर जघन्य प्रदेशादिना भेदेनेति, उक्तं च—'अणुमाइओहियाणं खेत्तादिपरससंगयाणं च जहन्नाभगाहणाइण चेव जहन्नादिदेसाण ॥१॥"

अस्याक्षरगमनिका—प्रथमतोऽण्वादीनां—परमाण्वादीनां चिन्ता कर्तव्या, तदनन्तर क्षेत्रादिप्रदेशसङ्गतानां, अत्रादिशब्दात्कालभाव परिग्रह, ततोऽयमर्थ—प्रथमत क्षेत्रप्रदेशैरेकादिभि संगतानां चिन्ता कर्तव्या तदनन्तर कालप्रदेशै—एकादिसमयैस्ततो भावप्रदेशै—एकगुणकालकादिभिरिति, तदनन्तर जघन्याद्यवगाहनादीनामिति, अत्रादिशब्देन मध्योत्कृष्टावगाहनाजघन्यमध्यमोत्कृष्ट स्थितिजघन्यमध्योत्कृष्टगुणकालकादिवर्णपरिग्रहः, ततो जघन्यादिप्रदेशानां—जघन्यप्रदेशानामुत्कृष्टप्रदेशानामजघन्योत्कृष्टप्रदेशानामिति।

तत्र प्रथमत क्रमेण परमाण्वादीनां चिन्तां कुर्वन्नाह—'परमाणुपोग्गलाणं भंते !' इत्यादि, स्थित्या चतु स्थानपतितत्व, परमाणो

शावगाढो वा त्रिप्रदेशावगाढो वा अपरस्तु द्विप्रदेशावगाढ एकप्रदेशावगाढो वा तदा द्विप्रदेशावगाढैकदेशाशावगाढौ यथाक्रम त्रिप्रदेशावगाढद्विप्रदेशावगाढापेक्षया एक प्रदेशहीनौ त्रिप्रदेशावगाढद्विप्रदेशावगाढौ तु तदपेक्षया एकप्रदेशाभ्यधिकौ, यदात्वेकस्त्रिप्रदेशावगाढोऽपर एकप्रदेशावगाढस्तदा एकप्रदेशावगाढस्त्रिप्रदेशावगाढापेक्षया द्विप्रदेशहीन त्रिप्रदेशावगाढस्तु तदपेक्षया द्विप्रदेशाभ्यधिक, एवमेकैकप्रदेशपरिवृद्ध्या चतुःप्रदेशादिषु स्कन्धेष्ववगाहनामधिकृत्यहानिर्वृद्धिर्वा तावद् वक्तव्या यावद् दश प्रदेश स्कन्ध तस्मिंश्च दशप्रदेशके स्कन्धे एव वक्तव्य 'जइ हीणे पएसहीणे वा दुपएसहीणे वा जाव नवपएसहीणे वा अह अब्भहिए पएसमब्भहिए वा दुपएसमब्भहिए वा जाव नवपएसमब्भहिए वा' इति भावना पूर्वोक्तानुसारेण स्वयं कर्तव्या, सख्यातप्रादेशिकस्कन्धसूत्रे 'ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए' इति सख्येयभागेन सख्येयगुणेन चेति, असख्यातप्रदेशकस्कन्धे 'ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए' इति असख्यातभागेन संख्यातभागेन संख्यातगुणेनासख्यात गुणेनेति, अनन्तप्रादेशिकस्कन्धेऽप्यवगाहनार्थतया चतुःस्थानपतिता, अनन्तप्रदेशावगाहनाया असभवतोऽनन्तभागानन्तगुणाभ्यां वृद्धि-

अथ परिशिष्टो भागः ॥

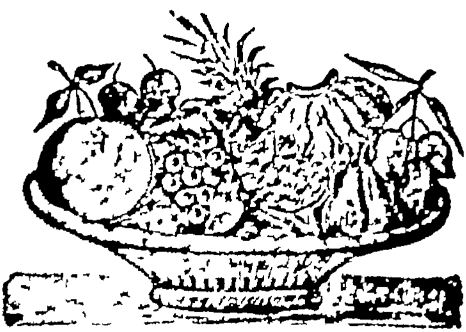
सिद्धिः स्याद्वादात् ॥ १।१।२॥

[illegible] त्वचनेनैरन्तर्येण, नन स्याद्वादोऽनेकान्तवादः नित्यानित्यत्व [illegible] प्रभृतीनां शब्दानां वेदितव्या, तथा [illegible] विशेषण-

[illegible] स्याद्वादमन्तरेणानोपपन्नो, सर्वथा [illegible] [illegible] ॥ [illegible]

[illegible]

र्नायम सुगमत्वात् नवरमनन्तप्रदेशोत्कृष्टावगाहनाचिन्तायां' ठिईएवि तुल्ले' इति उत्कृष्टावगाहन किलानन्तप्रदेशक स्कन्ध स उच्यते य समस्तलोकव्यापी स चाचित्तमहास्कन्ध केवलिसमुद्-घातकर्मस्कन्धो वा तयोश्चोभयोरपि दण्डकपाटमन्थान्तरपूरणलक्षण चतु समयप्रमाणेनेति तुल्यकालता शेष सूत्रमापदपरिसमाप्ते प्रागुक्तभावनाऽनुसारेण स्वयमुपयुज्य परिभावनीयं सुगमत्वात्, नवर जघन्यप्रदेशका स्कन्धा द्विप्रदेशका उत्कृष्टप्रदेशका सर्वो-त्कृष्टानन्तप्रदेशा ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापना-टीकाया विशेषाख्य पद समाप्तम ॥

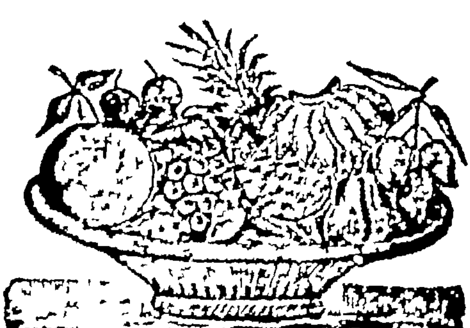


अथ परिशिष्टो भागः ॥

सूत्र—सिद्धिः स्याद्वादात् ॥ १।१।२॥

[illegible]

नीयम् सुगमत्वात्, नवरमनन्तप्रदेशोत्कृष्टावगाहनाचिन्तायां 'ठिईए वि तुल्ले' इति उत्कृष्टावगाहनः किलानन्तप्रदेशकः स्कन्धः स उच्यते यः समस्तलोकव्यापी स चाचित्तमहास्कन्धः केवलिसमुद्घातकर्मस्कन्धो वा, तयोश्चोभयोरपि दण्डकपाटमन्थान्तरपूरणलक्षण चतुःसमयप्रमाणतेति तुल्यकालता शेषं सूत्रमापदपरिसमाप्तं प्रागुक्तभावनाऽनुसारेण स्वयमुपयुज्य परिभावनीयं सुगमत्वात्, नवरं जघन्यप्रदेशका स्कन्धा द्विप्रदेशका उत्कृष्टप्रदेशका सर्वोत्कृष्टानन्तप्रदेशा ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापनाटीकायां विशेषाख्यं पद समाप्तम् ॥



अथ परिशिष्टो भागः ॥

मूलम्-सिद्धिः स्याद् वादात् ॥ १।१।२॥

स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतक, ततः स्याद्वादोऽनेकान्तवादः नित्यानित्याद्य नेकधर्मशबलैकवस्त्वभ्युपगम इति यावत् तत सिद्धि-निष्पत्तिर्ज्ञप्तिर्वा प्राकृतानां शब्दानां वेदितव्या, एकस्यैवहि ह्रस्व-दीर्घादिविधयोऽनेककारकसनिपात सामानाधिकरण्यं विशेषण-विशेष्यभावादयश्च, स्याद्वादमन्तरेणानोपपद्यन्ते, सर्वपार्षदत्वाच्च शब्दानुशासनस्य सकलदर्शनसमूहात्मकस्याद्वादसमाश्रयणमति-रमणीयम् । यदवोचामस्तुतिषु—अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्, यथा परे मत्सरिणः प्रवादाः । नयानशेषानविशेषमिच्छन् न पक्ष-पाती समयस्तथा ते ॥ स्तुतिकारोऽप्याह—"नयास्तवस्यात्पदलाञ्छना इमे रसोपविद्धा इवलोहधातव । भवन्त्यभिप्रेतफलायतस्ततो भवन्त-मार्या प्रणताहितैषिणः ॥ १ ॥ इति, अथवा वादात् विविक्तशब्द-प्रयोगात् सिद्धि सम्यग्ज्ञानतद्द्वारेण च निश्रेयस स्याद् भवेदिति शब्दानुशासनमिदमारभ्यत इत्यभिधेय प्रयोजनपरतयापीदं व्याख्येयम् ॥ २ ॥

न्यासः-सिद्धि स्याद्वादात् ॥ दशधा सूत्राणि—संज्ञा १ परिभाषा २ अधिकार, ३ विधि, ४ प्रतिषेध ५ नियम ६ विकल्प ७ समुच्चय ८ अतिदेश ९ अनुवाद १० रूपाणि तत्र औदन्ता स्वरा" इति १" "प्रत्यय प्रकृत्यादे ' इति २। 'घुटि", इति ३। नाम्यन्तस्था कवर्गात्—इति ४ "न स्तं मत्वर्थे", इति ५ "नाम सिदय व्यञ्जने" इति ६। 'सौनवेतौ'इति ७। 'शसोऽता'इति ८, 'इदितो वा, इति ९। 'तयो. समूहवच्च बहुषु' १० इत्यादीनि सूत्राणि प्रत्येकं ज्ञातव्यानि, एतेषां मध्ये इदमधिकारसूत्रमाशास्त्र-परिसमाप्ते ॥ स्यादित्यव्ययमिति विभक्त्यन्ताभत्वेन स्वरादि-त्वाद्वाऽनेकान्तद्योतयति वाचकत्वेनेत्यनेकान्तद्योतकम्। अनेकान्त-वाद इति, अमति गच्छति धर्मिणमिति 'दम्यमि" इति तेऽन्तो धर्म । न एकोऽनेक । अनेकोऽन्तोऽस्यासावनेकान्त तस्य वदनं याथातथ्येन प्रतिपादनम् तथाभ्युपगतस्यैवभवति इति, नित्यानि-त्याद्यीति । आदिशब्दात् सदसदात्मकत्वसामान्यविशेषात्मकत्वाभि-लाप्यानभिलाप्यत्वमह 'नेर्भुवे" इति त्यांच, नित्यमुभयाद्यन्ता-परिच्छिन्नसत्ताकं वस्तु। तद्विपरीतमनित्यम्। आदीयते-गृह्यते इति' उपसर्गाद् द. कि इति कौ आदि । धरन्ति-धर्मिणो मिति धर्मा वस्तुपर्याया ते च सहभुव सामान्यादय नव पुराणादय पर्याया । धर्ममन्तरेणधर्मिण स्वरूप-॥ शाम्यति-विरुद्धै र्धर्मैर्युगपत् परिणति मुपयाति "शमेर्न च'

तमन्तरेण सामानाधिकरण्य विशेषणविशेष्यभावोऽपि नोपपद्यते तथाहि—भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयो शब्दयो रेकत्रार्थे वृत्ति सामानाधिकरण्यम्। तयोश्चात्यन्त भेदे घटपटयोरिव नैकत्रवृत्ति नाप्यत्यन्ताभेदे, भेदनिबन्धनत्वात्तस्य। नहि भवतिनीलं नीलमिति। किञ्च नीलशब्दादेव तदर्थप्रतिपत्तौ उत्पलशब्दानर्थक्यप्रसङ्ग ॥ तथैकवस्तु भदं वेतिनियम्यमाने विशेषणविशेष्यभावाभाव। विशेषणाद् विशेष्यं कथंचिदर्थान्तरभूतमवगन्तव्यम्, अस्तित्व चेहविशेषणम्। तस्यविशेष्यवस्तु तदेव वास्यादन्यदेववानतावत्तादेव। नहि-तदेव तस्य विशेषणं, भवितुमर्हति असति च विशेष्येविशेषणत्वमपि न स्यात्। विशेष्यं-विशिष्यते येन तद् विशेषणमितिव्युत्पत्ते। अथा न्यत्तर्हि अन्यत्वाविशेषात् सर्वं सर्वस्यविशेषणंस्यात्। समवायात् प्रतिनियतो विशेषणविशेष्य भाव इतिचेत्, न सोऽपि अविष्वग् भावलक्षण एवैष्टव्य. । रूपान्तरपरिकल्पनायामनवस्थाप्रसङ्ग. । अतो नासावत्यन्तं भेदेऽभेदेवासम्भवनीतिभेदाभेदलक्षणः स्याद्वादो-ऽकामेनापि, अभ्युपगन्तव्यइति, आदिग्रहणात् स्थान्यादेशनिमित्तनिमित्ति प्रकृतिविकारभावादिग्रह। किञ्च शब्दानुशासनमिद ?,

... निविप्रतिपद्यते, नित्य इत्येके अनित्य इत्यपरे नित्यानित्य ...न्ये। तत्र नित्यत्वानित्यत्वयोरन्यतरपक्षपरिग्रहे सर्वोपादेय- ... स्यादित्याह—सर्वपार्षदत्वाच्चेति। स्वेन रूपेण व्यवस्थितं स्तु तत्त्वं प्रमाणानि-पालयन्तीति "प्र सद" इति सदि पर्षद् तत्र साधु

सत्परामाव ॥ पश्चात्तु विपर्ययात् तत्सद्भाव, इति सम्यगेति-गच्छति शब्दोऽर्थम् नेति "इणांत्रि" इति घे समय संकेत । यद्-वामन्ययवयान्त गच्छन्ति जीवादय पदार्था स्वस्मिनरूपं प्रतिष्ठांप्राप्नु-वन्त्य स्मन्निति समय आगम । सत्परित्वस्य विधेयत्वाद् नेनैवनञ समवन्धात्, पक्षपातिशब्देन यसव धात् प्रक्रमभेदाभाव । परोक्ते-नापि दृढय ति—नया इत्यादि । नीयन्ते प्राप्यन्ते जीवादयोऽर्था एकदेशविशिष्टा एभिरिति नया निरवधारणाअभिप्रायविशेषा । सादधारणस्यदुर्नयत्वात् समस्तार्थप्राप्तेस्तु प्रमाणाधीनत्वात्—ते च नैगमादय सत नव्राय्यात्पदेन चिन्हिता अभिप्रेत फलन्ति लिहाग्रच् अभिप्रेत फलं येभ्य इति बहुव्रीहिः ॥ प्रणा इति । प्रणन्तुमार-भवन्त । हितैषिण इति । विशेषणद्वारेण हेतु हितैषित्वादित्यर्थं । आराद्दूरान्तिकयो, सम्यग्ज्ञानाद्यात्मकमोक्षमार्गस्यारात्, समीपं-याता प्राप्ता, दूरं वा पापक्रियाभ्यो याता इत्यार्या । ननु अस्तु युक्तियुक्त स्याद्वाद तदधीनत्वाच्छब्दसिद्धे:, तथापि अनभिहि-ताभिधेय प्रयोजनत्वान् कथमिदं प्रेक्षावत् प्रवृत्तिविषयमित्या-

—अथवेति, विविक्तानामसाधुत्वविमुक्तानां शब्दानां प्रयुक्ते-रुपासिद्दि साधुशब्दाश्चात्राभिधेया । यमर्थमधिकृत्य प्रयोजनमिति सम्यग् ज्ञानमनन्तरं प्रयोजनं तद्द्वारेणतु परमिति । यत "द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परं शब्दब्रह्मणि निष्णात परब्रह्माधिगच्छति ॥१॥ व्याकरण

कापि भवति। तेनानित्यः शब्दः कृतकत्वादित्यादि सिद्धम्। उत्तरसूत्रेऽकर्दशाद्याचापोऽधिकार (?) इति वक्ष्यते। सस्थानक्रिय स्वमिति एतच्च वस्तुना साधर्म्यवैधर्म्यात्मकेऽनेकान्ते सत्युपपद्यते। तथाहि -अकाराकारयो ह्रस्वदीर्घकालभेदेन वैधर्म्येऽपि तुल्यस्थानकारणत्वेन साधर्म्यमस्तीति सवर्णसञ्ज्ञाव्यवहारः सिद्ध्यति। यदि हि साधर्म्यमेव स्यात् तदास्तित्वेनैवान्यैरपि धर्मैः साधर्म्ये सर्वमेकं प्रसज्येत। यदि च वैधर्म्यमेव तदा कस्यचिदस्तित्वमपरस्य नास्तित्वमन्यस्य चान्यत। अभूवृदिति अन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थवच्छब्दस्य मृत्सञ्ज्ञकमनेकान्तात् सिद्ध्यति। तथाहि विभक्त्यन्तस्य च शब्दस्य प्रयोगादर्थे ज्ञानमुत्पद्यत इति सञ्ज्ञाता अर्थवन्तो दृष्टा। तदवयवानामप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थवत्ता जायते। वृक्षावित्यत्र विसर्जनीयाभावादेकत्वार्थो निवृत्तः। औकारभावाद् द्वित्वं जातम्। अकारान्तवृक्षशब्दान्वयाज्ञानिरन्वयिनी प्रतीयते। अन्वयव्यतिरेकौ च भावावेकान्तवादे न स्तः। तथाह्यपाये ध्रुवमपादानमित्यादि षट्कारकी नित्यक्षणिकपक्षेऽनुपपन्ने व्यपायध्रौव्याद्यभावात्। उक्तञ्च—इदं फलमियं क्रिया

करणं, क्रमो व्ययोऽयमनुषङ्गजं फलमिदं दशेयं मम। अयं

सुहृदयं द्विषन् प्रयतदेशकालाविमाविति प्रतिवितर्कयन् प्रयतते बुधो।

(जिनेन्द्रव्याकरणम्—महावृत्ति)

नित्यतया परैरङ्गीकृतस्य प्रदीपस्य तावन्नित्यानित्यत्व व्यवस्थापने दिङ्मात्रमुच्यते, तथाहि—प्रदीपपर्यायापन्नास्तैजसा परमाणव स्वरसतस्तैलक्षयात् वाताभिघाताद् वा ज्योतिषपर्यायं परित्यज्य तमोरूप पर्यायान्तरमाश्रयन्तोऽपि नैकान्तेनानित्या पुद्गल द्रव्यरूप-तयावस्थितत्वात् तेषाम् । नह्येतावतैवानित्यत्वं यावतापूर्वपर्यायस्य-विनाश, उत्तरपर्यायस्यचोत्पाद । न खलु मृद्द्रव्यस्थासककोश कुशूलशिवकघटाद्यवस्थान्तराण्यापद्यमानमप्येकान्ततो विनष्टम्, तेषु मृद्द्रव्यानुगमस्याबालगोपालंप्रतीतत्वात् । न च तमस. पौ-द्गलिकत्वमसिद्ध चाक्षुषत्वान्यथानुपपत्ते प्रदीपालोकवत् ।। अथ यच्चाक्षुषतत्सर्वं स्वप्रतिभासे आलोकमपेक्षते । नचैव तम । तत् कथं चाक्षुषं । नैवम । उलूकादीनामालोकमन्तरेणापि तत् प्रति-भासात् । यैस्त्वस्मदादिभिरन्यच्चाक्षुषं घटादिकमालोक विनानोप-लभ्यते तैरपितिमिरमालोकयिष्यते, विचित्रत्वाद् भावानाम् । कथमन्यथा पीतश्वेतादयोऽपि स्वर्णमुक्ताफलाद्या आलोकापेक्ष-दर्शना प्रदीपचन्द्रादयस्तु प्रकाशान्तरनिरपेक्षा । इतिसिद्ध तमश्चा-क्षुषम् ।। रूपवत्त्वाच्चस्पर्शवत्त्वमपि प्रतीयते, शीतस्पर्शप्रत्ययजनक-त्वात् । यानि त्वनिबिडावयवत्वमप्रतिघातित्वमनुद्भूतस्पर्शविशेष-त्वमप्रतीयमानखण्डावयविद्रव्यप्रविभागत्वमित्यादीनि तमस पौद्-गलिकत्वनिषेधाय परै साधनान्युपन्यस्तानि तानिप्रदीप प्रभादृष्टान्ते-नैव प्रतिषेध्यानि, तुल्ययोगक्षेमत्वात् । नच वाच्य तैजसा परमा

णत्र कथंतमस्त्वेन परिणमन्त इति। पुद्गलाना तत्तत्सामग्रीसह-
कृताना विसदृशकार्य्योत्पादकत्वस्यापिदर्शनात्। दृष्टो ह्यार्द्रेन्धन-
सयोगवशाद् भास्वररूपस्यापि वन्हेरभास्वररूपधूमकार्योत्पाद।
इति सिद्धोनित्यानित्य प्रदीप यदापि निर्वाणादर्वाग् देदीप्यमाना-
दीपस्तदापि नव नव पर्यायोत्पादविनाशभाक्त्वात् प्रदीपान्वयाच्च
नित्यानित्य एव॥ एव व्योमापि उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वाद् नित्या-
नित्यमेव। तथाहि—अवगाहकाना जीव पुद्गलानामवगाहदानोप-
ग्रहएवतल्लक्षणम। 'अवकाशदमाकाशम॥ इतिवचनात्। यदा-
चावगाहका जीवपुद्गला प्रयोगतो विस्रसातो वा एकस्मान्नभ
देशात् प्रदेशान्तरमुपसर्पन्ति तदा तस्य व्योम्नस्तैरवगाहकै
सममेकस्मिन प्रदेशे विभाग उत्तरस्मिश्च प्रदेशे सयोग। सयोग-
विभागौच परस्पर विरुद्धौ धर्मौ। तद्भेदे चावश्यधर्मिणोभेद।
तथाचाहु—"अयमेवहिभेदो भेदहेतुर्वा, यद् विरुद्धधर्माध्यास
कारणभेदश्चेति॥ ततश्च तदाकाश पूर्वसंयोगविनाशलक्षणपरि-
णाम पत्या विनष्टम, उत्तरसयोगोत्पादाख्य परिणामानुभवाच्चो-
त्पन्नम। उभयत्राकाशद्रव्यस्यानगतत्वाच्चोत्पादव्ययोरेकाधि-
करणत्वम्॥ तथाच यद् "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपनित्यम' इति
नित्यलक्षणमाचक्षते। तदपास्तम। एवविधस्य कस्यचिद् वस्तुनो-
ऽभावात्। "तद्भावाव्यय नित्यम"। इति तु सत्य नित्यलक्षणम
उत्पादविनाशयो सद्भावेऽपि तद्भावाद् अन्वयिरूपाद् यन्नव्येति

तन्नित्यमिति तदर्थस्य वर्तमानत्वात् यदि हि अप्रच्युतादिलक्षणं नित्यमिष्यते तदोत्पादव्यययोर्निराधारत्वप्रसङ्ग । नच तयोर्योगे नित्यत्वहानि । "द्रव्य पर्यायवियुतं पर्याया द्रव्यवर्जिता. क्व कदा केन किंरूपा दृष्टामानेनकेनवा ॥ इतिवचनात् । लौकिकानामपि घटाकाश पटाकाशमिति व्यवहारप्रसिद्धेराकाशस्य नित्यानित्यत्वम । घटाकाशमपि हि यदा घटापगमे. पटनाक्रान्तं तदा पटाकाशमिति व्यवहार । नचायमौपचारिकत्वादप्रमाणमेव । उपचारस्यापि किञ्चित् साध र्म्यद्वारेण मुख्यार्थस्पर्शित्वात् । नभसोहि यत् किल सर्वव्यापकत्व मुख्यं परिमाण तत् तदाधेयघटपटादिसम्बन्धि नियतपरिमाणवशात कल्पितभेद सत्प्रतिनियतदेश व्यापितया व्यवह्रियमाण घटाकाशपटाकाशादि तत्तद्व्यपदेशनिबन्धन भवति । तत्तद्घटादिसम्बन्धेच व्यापकत्वेनावस्थितस्य व्योम्नोऽवस्थान्तरापत्ति, तत्रावस्थाभेदेऽवस्थावतोऽपिभेद । तासांततोऽविष्वगभावात इतिसिद्ध नित्यानित्यत्व व्योम्न ॥ न्यायमुद्रा—अपि हि नित्यानित्यमेव वस्तुप्रपन्ना । तथाचाहुर्न्त्रिविध लक्षणधर्मिण परिणामो धर्मलक्षणावस्थारूप । सुवर्णधर्मि । तस्य धर्मपरिणामो वर्धमानरुचकादि । धर्मस्य तु लक्षणपरिणामोऽनागत चादि यदा स्वलक्षण हेमकारो वर्धमानक भञ्जत्वा रुचकमारचयति तदा वर्धमानो वर्तमानतालक्षणं हित्वा अतीततालक्षणमापद्यते । रुचकस्तु

अनागततालक्षण हित्वा वर्तमानतालक्षणमापद्यते । वर्तमानतता-

युक्त्या प्रतिपन्नमेव । तथा च एवाह—शब्दकारणत्ववचनात् सयोगविभागौ" इति नित्यानित्यपक्षयो सवलितत्वम । एतच्चलेशतोभावितमेवेति ॥ प्रलापप्रायत्व च परवचनानामित्थ समर्थनीयम् । वस्तुनस्तावदर्थक्रियाकारित्वलक्षणम् । तच्चैकान्तनित्यानित्यपक्षयो न घटते । अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपोहि नित्य, सच क्रमेणार्थक्रिया कुर्वीत अक्रमेणवा। अन्योऽन्यव्यवच्छेदरूपाणा प्रकारान्तरासभवात् । तत्र नतावत् क्रमेण, स हि कालान्तर भाविनी क्रिया प्रथमक्रियाकाल एव प्रसह्य कुर्यात् समर्थस्य कालक्षेपायोगात् कालक्षेपिणो वा असामर्थ्यप्राप्ते समर्थोऽपि तत्तात् सहकारिसमवधाने त तमर्थ करोतीति चेत्, न तर्हि तस्य सामर्थ्यम्, अपरसहकारिसापेक्षवृतित्त्वात् । "सापेक्षमसमर्थम्" इति न्यायात् ॥ न तेनसहकारिणोऽपेक्ष्यन्ते अपितु कार्यमेवसहकारिष्वसत्स्वभवत् तान्यपेक्षते इतिचेन तत किं स भावोऽसमर्थो समर्थो वा,समर्थश्चेत्, किंसहकारिमुख प्रक्षणदीनानि तान्युपेक्षते न पुनर्झटिति घटयति । ननु समर्थमपिबीज मिलाजलानिलादि सहकारिसहितमेवांकुरंकरोति नान्यथा । तत् किं तस्य सहकारिभि किञ्चिदुपक्रियेत नवा यदि नोपक्रियेत तदा सहकारिसन्निधानात् प्रागिव, किंन तदाप्यर्थक्रियायामुदास्ते उपक्रियेत इति चेत् स तर्हितैरुपकारोऽभिन्नोभिन्नोवा क्रियते इतिवाच्यम् । अभेदे स एव क्रियते । इति लाभमिच्छतो मूलक्षतिरायाताकृतकत्वेन तस्यानित्यत्वापत्ते । भेदे तु कथं तस्यो-

स्यासंभवि । अवस्थितस्यैव हि नानादेशकालव्याप्ति· देशक्रम कालक्रमश्चाभिधीयते नचैकान्तविनाशिनिसास्तियदाहु — योयत्रैवसतत्रैव यो यदैव तदैव स । न देशकालयोर्व्याप्ति भावानामिहविद्यते ॥ नच सतानापेक्षया पूर्वोत्तरक्षणानांक्रम· संभवति, सतानस्यावस्तुत्वात्, वस्तुत्वेऽपि तस्य यदि क्षणिकत्वं, न तर्हि क्षणेभ्य कश्चिद् विशेष· अथाक्षणिकत्वतर्हि समाप्त· क्षणभंगवाद ॥ नाप्यक्रमेणार्थक्रियाक्षणिके संभवति । सह्येको बीजपूरादिक्षणो युगपदनेकान रसादिक्षणान जनयन एकेनस्वभावेन जनयेत्, नानास्वभावैर्वा ? यद्येकेनतदातेषांरसादिक्षणानामेकत्वं स्यात् एकस्वभावजन्यत्वात । अथ नानास्वभावै जनयति किञ्चिद् रूपादिकमुपादानभावेन, किञ्चिद्रसादिक सहकारित्वेन, इतिचेत तर्हि ते स्वभावा स्तस्यात्मभूता अनात्मभूता वा ! अनात्मभूताश्चे त् स्वभावत्वहानि, यद्यात्मभूता तर्हितस्यानेकत्वम । अनेकस्वभावत्वात्, स्वभावाना वा एकत्व प्रसज्येत तदव्यतिरिक्तत्वात् तेषां तस्यचैकत्वात् ॥ अथय एव एकत्रोपादानभाव स एवान्यत्र सहकारिभाव इति न स्वभावभेद इष्यते । तर्हि नित्यस्यैकरूपस्यापिक्रमेण नानाकार्यकारिण स्वभावभेद·कार्यसाकर्यंश्च कथमिष्यते क्षणिकवादिना । अथ नित्यमेकरूपत्वादक्रम, अक्रमाच्च क्रमिणां नानाकार्याणां कथमुत्पत्ति इतिचेत, अहो स्वपक्षपाती देवानांप्रिय यः खलु एकस्माद् निरंशाद् रूपादिक्षणलक्षणात् कारणात् युगपद-

लेखक की अन्य रचनाएं

१ श्री उत्तराध्ययन सूत्र
तीनो भाग

२. श्री दशाश्रुत-स्कन्ध सूत्र

३. श्री अनुत्तरोपपातिक सूत्र

४. श्री दशवैकालिक सूत्र

५. श्री अनुयोगद्वार सूत्र

६. श्री अन्तगढ सूत्र (अप्रकाशित)

७ श्री स्थानांग सूत्र ,,

८ श्री आचारांग सूत्र ,,

९ श्री समवायांग सूत्र ,,

१० श्री नन्दी सूत्र ,,

११ श्री बृहत्कल्प सूत्र ,,

१२. निरयावलिका सूत्र ,,

१३. आवश्यक सूत्र

१४. तत्वार्थ सूत्र
(जैनागम सम-

१५. तत्वार्थ सूत्र (भाषाट

१६ वीर त्थुई

१७ जीवकर्म-संवाद

१८. जीव-शब्द-सम्वाद

१९. विभक्ति सम्वाद

२०. जैनधर्म शिक्षावली
(आठ भाग

२१. जैन-सिद्धान्त (अप्राप्य

२२. कर्म पुरुषार्थ निर्णय (अ:
आदि आदि

प्राप्ति-स्थान—

जैन-शास्त्रमाला-कार्यालय

जैन स्थानक, लुधियाना